॥ श्री ॥

महाकवि श्रीजयदेव विरचितम्

गीतगोविन्द काव्यम् ।

भाषाटीका समन्वितम् ।

अम्बिकाप्रसाद शर्म्मणा संशोधितम् काशीस्थ
विश्वविद्यालये व्याकरणसाहित्या
ध्यापकेन व्याकरणाचार्येण

काशीस्थ भार्गव पुस्तकालयाध्यक्षेण
बाबू काशीप्रसाद भार्गवेण

काशीयां

द्वितीयबार २०००] सन् १९२५ ई० । [मूल्य ॥)

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

अथ

॥ भाषा टीका समेतम् ॥

गीतगोविन्दम् ।

प्रथमः सर्गः ।

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै- ।
र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तादिमं राधे गृहं प्रापय ॥
इत्थं नंदनिदेशतश्चालितयोः प्रत्यध्वकुंजद्रुमं ।
राधामाधवयोर्जयान्तियमुनाकूलेरहःकेलयः १

भा० टी०—एक समय राधिका, श्रीकृष्ण, और कोई सखी किसी बनमें उपस्थित थे जब संध्या हो गई तब सखी राधिका से बोली कि, हे राधे ! यह आकाश मेघोंसे

आच्छादित हो रहा है, और वनकी जमीन भी तमाल वृक्षोंसे श्यामवर्ण हो गई है। और श्रीकृष्ण रात्रिमें डरते हैं इस लिये तुम्हीं इनको घर पहुँचा आवो, इस प्रकार सखीकी आज्ञा पाकर राधा और कृष्ण चले उन के मार्गके कुंज तथा वृक्षोंके बीच २ जमुना के तीर पर एकान्त की क्रीड़ा सब क्रीड़ाओं से बढ़ चढ़ के है यह वस्तु निर्देशात्मक मंगल है ॥ १ ॥

वाग्देवताचरितचित्रितचित्तसद्मा ।
पद्मावतीचरणचारण चक्रवर्त्ती ॥
श्रीवासुदेवरति केलिकथासमेत- ।
मेतं करोतिजयदेवकविः प्रबन्धम् ॥२॥

भा० टी०--सरस्वतीजी के चरित्र से जिनका चित्त स्वरूप गृह सुशोभित हो रहा है और लक्ष्मी (राधिका की चरण सेवकों में चक्रवर्ती श्रेष्ठ जयदेव कवि श्रीकृष्णकी रति क्रीड़ा (रासलीला) विषयक यह प्रबन्ध (गीतगोविन्द) बनाते हैं ॥२ ॥

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो ।
यदिविलासकलासु कुतूहलम् ॥
मधुरकोमलकान्तपदावलिं ।
शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम् ॥ ३ ॥

भा० टी०--यदि आपलोगोंका चित्त भगवान के स्मरण में लीन है, और यदि विलास कलाओंको सुननेकी इच्छा है तो अति मधुर कोमल और सुन्दर पदावली संयुक्त जयदेव कविकी वाक्य रचना सुनिये ॥ ३ ॥

वाचःपल्लवयत्युमापतिधरः सन्दर्भशुद्धिं गिरां।
जानीते जयदेव एव शरणःश्लाघ्यो दुरूहद्रुतेः॥
शृंगारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्धन- ।
स्पर्द्धीकोऽपिनावश्रतःश्रुतिधरोधोईकविर्क्ष्मापतिः,

भा० टी०—उमापतिधर कवि शब्दाडम्बर करनेमें निपुण थे किन्तु अर्थ गौरव नहीं) अर्थ और शब्द दोनोंसे वचन की सन्दर्भाशुद्धि (ग्रंथ शैली) जयदेव ही जानता है। और शरण नाम कवि क्लिष्ट काव्य रचना में चतुर था, तथा गोवर्द्धनाचार्य की शृंगार रसकी कविताके साथ कोई भी स्पर्द्धा (बराबरी) न कर सका और धोई नाम कविराज एक बार कहनेसे धारणमात्र कर लेता था, किन्तु अर्थादि समझनेमें कुशल नहीं था प्रथम भगवानके दशावतारका वर्णन करते हैं ।

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम् ॥
विहित-वहित्रचरित्र मखेदम् ॥
केशव धृतमीनशरीर जय जगदीश हरे ॥१॥

भा० टी०-हे मत्स्यरूपको धारण करने वाले केशव ! आपने प्रलय के समय समुद्रमें विना परिश्रम नौकाका रूप धारण किया अतः हे जगदीश ! हे हरे आप की जयहो

क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे ॥
धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे ॥
केशव धृतकच्छपरूप जय जगदीश हरे ॥२॥

भा० टी०—हे कूर्म (कछुआ) का रूप धारण करने वाले केशव ! आपने अपनी बड़ी भारी पीठपर पृथ्वीके धारण किया इसीसे आप पृथ्वी धारण व्रणके चिन्ह (ठेले) पडगये है इसलिये हेहरे आपकी जयहो ॥

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना ॥
शशिनि कलंककलेव निमग्ना ॥
केशव धृतसूकररूप जय जगदीश हरे ॥ ३ ॥

भा० टी०-हे सूकरावतार धारण करनेवाले केशव आपके दन्त पर लगीहुई पृथ्वी चन्द्रमाकी कलंक रेखा समान शोभित होती थी, अतः हे हरे आपकी जय हो

तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गम् ॥
दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गम् ॥

केशव धृतनरहरिरूप जय जगदीश हरे ॥ ४ ॥

भा० टी०—हे नरसिंह रूपको धारण करनेवाले केशव ! आपके करकमलोंमें जो विलक्षण नख हैं उनसे हिरण्यकसिपुके शरीररूपी भ्रमरको विदारण किया अतः हे हरे० ॥

छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन ॥
पदनखनीरजनितजनपावन ॥
केशव धृतवामनरूप जय जगदीश हरे ॥ ५ ॥

भा० टी०—हे वामनरूपको धारण करने वाले केशव ! आपने अद्भुत वामनावतार को धारण कर बलिनाम दैत्य को ठगाथा और चरणके नख कमलसे संसारको पवित्र किया अतः हे जग० ॥ ५ ॥

क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापम् ॥
स्नपयसि पयसि शमितभवतापम्
केशव धृतभृगुपतिरूप जय जगदीश हरे ॥६॥

भा० टी०—हे परशुरामके रूपको धारण करनेवाले केशव ! आपने परशुरामावतारमें क्षत्रियोंके रुधिर में संसार को स्नान कराकर जगत्के पापोंका और तीनों तापोंका नाशकिया, अतः हे जग० ॥ ६ ॥

वितरसि दिक्षुरणे दिक्पतिकमनीयम् ॥
दशमुखमौलिबलिं रमणीयम् ॥
केशव धृतरघुपतिरूप जय जगदीश हरे ॥ ७ ॥

भा० टी०—हे रामचन्द्रके रूपधारण करनेवाले केशव! आपने इन्द्रादिदेवोंकेअनुकूल रण में रावण नाम राक्षसराजके दशमुखोंको दशों दिशाओंको बलिदान दिया अतः हे० ॥ ७ ॥

वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभम् ॥
हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम् ॥
केशव धृतहलधररूप जय जगदीश हरे ॥ ८ ॥

भा० टी०—हे हल धारण करनेवाले केशव! आपने स्वच्छ शरीर पर मेघके समान वस्त्र [नीलाम्बर] धारणकिया वह वस्त्र मानों हल के डर से आईहुई यमुना के सदृश मालूम पड़ता, अतः हे जग० ॥ ८ ॥

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम् ॥
सदयहृदय दर्शितपशुघातम् ॥
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे ॥ ९ ॥

भा० टी०—हे बुद्ध रूप धारण करने वाले केशव ! आपने यज्ञ विषयक श्रुतियोंका जिनमें पशुहिंसा है उनकी निन्दा की है, अतः हे दयायुक्त अन्तःकरणवाले जगदीश० ॥९॥

म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालम् ॥
धूमकेतुमिव* किमपि करालम् ॥
केशव धृतकल्किशरीर जय जगदीशहरे॥१०॥

भा० टी०—हे कल्कीरूप धारण करनेवाले केशव ! आपने म्लेच्छोंके वध निमित्त धूमकेतुके समान अपूर्व तरवार धारण किया अर्थात् आपने कल्की अवतार लेकर म्लेच्छों का विनाश किया अतः हे जगदीश ० ॥ १० ॥

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारम् ॥
शृणु सुखदं शुभदं भवसारम् ॥
केशव धृतदशविधरूप जय जगदीश हरे ॥११॥

भा० टी०—हे दशविधरूपधारी जगदीश हे हरे आपकी जय हो और हे भक्तजनों ! यह श्री जयदेव कविका बनाया हुआ, मनोहर, सुख तथा कल्याणकारी और संसार के तत्वस्वरूप है । इस स्तोत्रको सुनो अर्थात् इसके सुननेसे सब प्रकार के सुख होंगे ॥ ११ ॥

इति श्री गीतगोविन्द भाषा टीकायां प्रथम प्रबन्धः ॥

* इस तारा का जब उदय होता है तब सन्सार में बहुत बड़ा उपद्रव होता है ।

पूर्वमें कहे हुए दश अवतारोंका कृत्य संक्षेप से वर्णन करते हैं ।

वेदानुद्धरते जगन्तिवहते भूगोलमुद्बिभ्रते ।
दैत्यंदारयते बलिंछलयते क्षत्रक्षयंकुर्वते ।
पौलस्त्यंजयते हलंकलयते कारुण्यमातन्वते ।
म्लेच्छान्मूर्च्छयतेदशाकृतिकृतेकृष्णायतुभ्यंनमः

भा० टी०-हे जगदीश ! (१) मत्स्यावतार लेकर वेदोंको उद्धार करने वाले (२) कूर्म्मावतार से जगत को धारण करने वाले (३) वराहवतारसे पृथ्वी मण्डल को धारण करने वाले (४) नृसिंहरूप धारण कर हिरण्यकसिपु का वध करने वाले (५) वामनावतार से बलिको छलने वाले (६) परशुराम रूपसे क्षत्रियों का नाश करने वाले (७) रामावतार लेकर रावणका विनाश करने वाले (८) बलरामावतार में हल धारण करने वाले (९) बुद्धावतारमें दयाका बिस्तार करने वाले (१०) कल्की अवतार धारण कर म्लेच्छ की संहार करने वाले इस प्रकार दश विध अवतारधारी श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम है ॥ १ ॥

अथ दूसरा प्रबन्ध गुर्जरी राग प्रतिमंठताल

श्रितकमलाकुचमण्डल धृतकुण्डल ए ॥

कलितललितवनमाल जय जय देव हरे ॥१॥

भा० टी०-हे लक्ष्मी के दोनों कुचोंको आश्रयण करने वाले ! हे कुण्डल ! धारी ! पुष्प माला को धारण करने वाले ! हे देव ! आप की जय हो २ ॥

दिनमणिमण्डलमण्डन भवखण्डन ए ॥
मुनिजनमानसहंस जयजय देव हरे ॥ २ ॥

भा० टी०-हे सूर्य्यमंडल के आभूषण ! अर्थात् सूर्य्य में जो तेज है वह आपही का है । हे सांसारिक दुःखका विनाशकरनेवाले (अथात् संसारका आवागमन मिटानेवाले हे मुनि जनोंके मानस (चित्त) के हंस स्वरूप ! हे देव ! आप० ॥ २ ॥

कालियविषधरगञ्जन जनरञ्जन ए ॥
यदुकुलनलिनदिनेश जय जय देव हरे ॥३॥

भा० टी-हे कालिय नाम सर्पराजके मदको नष्ट करने वाले ! भक्तजनोंके आनन्ददाता ! हे यदुकुलरूपी कमलके सूर्य (जैसे सूर्यको देख कमल प्रफुल्लित हो जाता है वैसेही आपने यदुकुलको आनन्दित किया -) हे देव आप० ॥ ३ ॥

मधुमुरनरकविनाशन गरुडासन ए ॥
सुरकुलकेलिनिदान जयजय देव हरे ॥४॥

भा०टी०–हे मधु, और मुर नरक नामक असुरों के विनाशक! हे गरुडवाहन! हे देवताओंकी क्रीडाके आदि कारण! (आपने देवताओंको मधुआदिक शत्रुओंको मारकर देवताओंको आनन्दमें मग्न कर दिया जब ये राक्षस जीवितथे तब इनके भयसे इन्द्रादिदेवता बहुतदुःखी थे इन सब शत्रुवोंका नाश होनेसे सब देवगण निश्चिन्त भावसे नन्दनवनमें क्रीडा कर रहे हैं ॥ ४ ॥

अमलकमलदललोचन भवमोचन ए ॥
त्रिभुवनभवनानिधान जयजय देव हरे ॥ ५ ॥

भा०टी०–हे निर्मल कमलके पत्र समान विशाल नेत्रवाले! हे संसाररूपीजालसे छुडानेवाले! हे त्रिलोकी रूप गृहके निधान (सारख रूप) स्वरूप! हे देव आप०॥५॥

जनकसुताकृतभूषण जितदूषण ए ॥
समरशमितदशकण्ठ जयजय देव हरे ॥ ६ ॥

भा० टी०–हे जानकीजी से आभूषित! हे दूषणनाम राक्षसराजके संहारक! हे रणमें रावणको शान्त करनेवाले, हे देव आप० ॥ ६ ॥

अभिनवजलधरसुन्दर धृतमन्दर ए ॥
श्रीमुखचन्द्रचकोर जयजय देव हरे ॥ ७ ॥

भा०टी०—नवीनमेघके सदृश सुन्दर ! हे मन्दराचल को धारण करनेवाले ! हे लक्ष्मीके मुखरूपी चन्द्रमाके चकोर ! हे देव ! आप० ॥ ७ ॥

तव चरणे प्रणता वयमिति भावय ए ॥
कुरु कुशलंप्रणतेषु जयजय देव हरे ॥ ८ ॥

भा०टी०—हे देव ! हमलोग आपके चरणोंमें प्रणाम करते हैं यह आप जानिये और प्रणत हमलोगों को कल्याण करें और आपकी जय हो ॥ ८ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदं कुरुते मुदम् ॥
मंगलमुज्ज्वलगीतं जयजय देव हरे ॥ ९ ॥
इति श्रीगीतगोविन्दे द्वितीयःप्रबन्धः ॥ २ ॥

भा०टी०—हे देव ! हे हरे ! आपकी जयहो और यह श्रीजयदेव कविका बनाया हुआ, मङ्गलकारी मनोहर गीत श्रवण या पढ़नेवालोंको आनन्ददाता है ॥ ९ ॥
इति श्रीगीतगोविन्द भाषा टीकायां द्वितीयः प्रबन्धः ॥२॥

—o(❀)o—

पद्मापयोधरतटीपरिरम्भलग्न-,
काश्मीरमुद्रितमुरो मधुसूदनस्य ॥
व्यक्तानुरागमिव खेलदनङ्गखेद- ।
स्वेदाम्बुपूरमनुपूरयतु प्रियं वः ॥ १ ॥

भा०टी०—श्रीलक्ष्मी महारानीके वक्षःस्थल केआलिङ्गन करनेसे लगी हुई केसर चिन्हित (शृंगार के समय महारानीने अपने स्तनोंमें जो केसर लगाया था वही श्रीकृष्ण के आलिंगन करनेसे उनकी छातीमें लग गया) वही श्रीकृष्ण के हृदयमें लगा हुआ केसर मानो प्रत्यक्ष अनुराग (प्रेम) है। अथवा राधिकाजीने श्रीकृष्णके हृदयमें मुद्रा (मोहर) करदी है कि मेरी आज्ञाके बिना इसको कोईभी स्पर्श न करै। और रतिके परिश्रमसे उत्पन्न स्वेद (पसीना) के प्रवाह से युक्त श्रीकृष्णचन्द्र का हृदय आप लोगों का कल्याण की वृद्धि करै ॥ १ ॥

वसन्ते वासन्तीकुसुमसुकुमारैरवयवै-,
र्भ्रमन्तीकान्तारे बहुविहितकृष्णानुसरणाम् ।
अमन्दं कन्दर्पज्वरजनिताचिन्ताकुलतया ।
चलद्बाधांराधांसरसमिदमूचे सहचरी ॥ २ ॥

भा०टी०—माधवीलताके पुष्पोंसेभी अधिक कोमलाङ्गी निर्जन वनमें घूमनेवाली श्रीकृष्णजी के पीछे वार वार घूमती हुई और अत्यन्त बढ़ी हुई कामदेव की ज्वालासे उत्पन्न हुई चिन्ता की व्याकुलतासे पीड़ित राधिकासे कोई सखी वसन्तकालमें विलास पूर्वक यह (वक्ष्यमाण गीत] बोली ॥ २ ॥



॥ अथ तृतीय प्रबन्ध वसन्तराग रूपक ताल ॥

ललितलवङ्गलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे।
मधुकरनिकरकराम्बितकोकिलकूजितकुंजकुटीरे
विहरति हरिरिह सरसवसन्ते ॥ नृत्यति युवति जनेन समंसखि विरहिजनस्य दुरन्ते ॥ ध्रुव०॥

भा०टी०—हे राधे ! सुन्दर लौंगकी लताके स्पर्शसे मन्द मन्द बहती हुई मलय पर्वतकी वायुसे संयुक्त, तथा भौंरों के झुण्डसे झंकारित, और कोयलोंकी कूकसे कूजित निकुञ्जवाले इस मनोहर और वियोगी जनोंको दुःखदाई वसन्तकालमें श्रीकृष्णचन्द्र युवती गोपिकाओं के साथ नाचते और विहार करते हैं ।

उन्मदमदनमनोरथ पाथिकवधूजनजनित विलापे। अलिकुलसंकुलकुसुमसमूहनिराकुल-वकुलकलापे ॥ २ ॥

भा०टी०-उन्मत्त करने वाले काम की इच्छासे पथिकोंकी स्त्रियोंको विलाप कराने वाला । (अर्थात् इस वसन्त ऋतु में विरहिणी स्त्रियां काम से पीडित हो कर विलाप करती हैं) वकुल- [मौलसिरी] के फूलों पर भंवरे व्याप्त हो रहे हैं ऐसे वसन्त ऋतुमें श्रीकृष्णचन्द्रजी युवती गोपियोंके साथ नृत्य और विहार करते हैं ॥ २ ॥

मृगमदसौरभरभसवशंवदनवदल मालत माले ॥ युवजनहृदयविदारणमनसिजनखरुचि किंशुकजाले ॥ ३ ॥

भा० टी०-कस्तूरीके गन्धके समान गन्धवाले नवीन पत्रोंसे शोभित संयुक्त तमाल के वृक्षों और युवक लोगोंके हृदयको विदारण करने वाले कामदेवके नखोंके सदृश पलासके पुष्प हैं ऐसा वसंत ऋतु० ३

मदनमहीपतिकनकदण्डरुचि केसरकुसुम विकाशे ॥ मिलितशिलीमुखपाटलिपटलकृत-स्मरतूणविलासे ॥ ४ ॥

भा० टी०—फूलेहुए नागकेसर के पुष्प ऐसे शोभायमान हो रहे हैं, कि मानो राजा कामदेव का सुवर्ण दण्डवाला छत्र होय। पाटली के (गुलाब) पुष्पोंमें बैठे हुए भ्रमर ऐसे शोभित हो रहे हैं मानो कामदेवके तूणीर (तरकस) में वाण भरे होयं। ऐसे वसंत के समय श्रीकृष्ण युवती गोपियों के साथ नृत्य और विहार करते हैं ॥ ४ ॥

विगलितलज्जितजगदवलोकनतरुणवरुणकृतहासे। विरहिनिकृन्तनकुन्तमुखाकृतिकेतकिदन्तुरिताशे ॥ ५ ॥

भा० टी०—निर्लज्ज जगतको देखने के लिये नवीन वरुण वृक्षके पुष्पको विकाशित कर मानों हास्य कर रहे हैं और वियोगी जनोंको काटने के लिये भाले के नोक की तरह के वडोसे हो रही हैं ॥ ऐसी वसंत ऋतुमें श्रीकृष्ण युवती गोपियोंके साथ नृत्य और विहार करते हैं ॥ ५ ॥

माधविकापरिमलललिते नवमालतिजातिसुगन्धौ। मुनिमनसामपि मोहनकारिणि तरुणाकारणबन्धौ ॥ ६ ॥

भा०टी०—मधुमालती की मनोहर सुगन्धिसे अति मनोहर, नवीन मालती और चमेली की सुगन्धिसे सुगन्धित, मुनिजनों के चित्तको भी मोहने वाला और युवा जनोंका

स्त्रा पात्रि ह मत्र, ऐसे वसन्तकालमें श्री कृष्ण गोपियों के साथ विहार और नृत्य करते हैं ॥ ६ ॥

स्फुरदतिमुक्तलता परिरम्भण मुकुलित पुलकितचूते। वृन्दावनविपिने परिसरपरिगतयमुनाजलपूते ॥ ७ ॥

भा०टी०—खिली हुई (या हिलती हुई) माधवी लताके स्पर्शसे खिले हुए आम मानो पुलकित होगए हैं, जैसे चंचल स्त्री के आलिंगन करनेसे पुरुष रोमांचित होजाता है उसी प्रकार लता [स्त्री] के आलिंगन करनेसे आम्र वृक्ष [पुरुष] मुकुलित और पुलकित होगया अर्थात् आम्रके वृक्षों में मञ्जरी आगई, जमुना जलसे वृन्दावन के आस पास ज मीन पवित्र हो गई है वसन्त में श्रीकृष्ण गोपियों के साथ विहार और नृत्य कर रहे हैं ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिदमुदयतिहरिचरणस्मृतिसारम्। सरसवसन्तसमयवनवर्णनमनुगतमदनविकासम् ॥ ८ ॥

❁ इति गीतगोविन्दे तृतीयः प्रबन्धः ३ ❁

भा० टी०—यह श्रीयुत जयदेव कविका श्रीकृष्ण के चरणोंके स्मरणका तत्वभूत, कामदेवके विलास संयुक्त और सरस वसन्त ऋतु का वर्णन संसार में प्रतापित होय ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दभाषाटीकायां तृतीयः प्रबन्धः ॥ ३ ॥

दरविदलितमल्लीवल्लिचञ्चत्पराग,
प्रकटितपटवासैर्वासयन् काननानि ॥
इह हि दहति चेतः केतकीगन्धबन्धुः,
प्रसरदसमबाणप्राणवद्गन्धवाहः ॥ १ ॥

भा० टी०—कुछ खिली चमेली से (अधिक खिलनेसे सुगन्ध उड़ जाती है इसलिये कुछ खिली हुई कहा) निकलता हुआ जो पराग (पुष्पोंकी धूली) वही हुआ पटवास (सुगन्धिद्रव्योंका चूर्ण विशेष) उससे वनों को सुगन्धित करता हुआ और केतकीके पुष्पोंकी सुगन्धिका मित्र, तथा, कामदेव के प्राणके समान यह वायु इस बसन्त ऋतुमें विरहीजनोंके प्राणोंको जला रहा है ॥१॥

अद्योत्संगवसद्भुजंगकवलक्लेशादिवेशाचलं
प्रालेयप्लवनेच्छयाऽनुसरति श्रीखंडशैलानिलः
किंचास्निग्धरसालमौलिमुकुलान्यालोक्यहर्षोदया
दुन्मीलंतिकुहूःकुहूरितिकलोत्तालाः पिकानांगिरः

भा० टी०—हे राधे ! इस बसन्त ऋतुमें यह मलय वायु, चन्दनके वृक्षोंमें रहनेवाले सर्पोंके मुखमें जानेसे दुःख से मानो हिम (पाला) में स्नान करनेकी इच्छासे हिमा-

चलकी ओर जा रही है (मलयपर्वत दक्षिणमें है और हिमाचल उत्तरमें है जो दाक्षिणकी ओरसे बहता है, वह उत्तरकी ओर अवश्यही जायगा यहां उत्प्रेक्षा की जाती है कि यह वायु इधर उधर न जाकर सीधी उत्तरही की ओर क्यों जारही है ? उत्तरमें जानेका यही कारण है कि मलयाचलमें रहने से वहांके सर्पोंके विषसे गरमाय गई है अतः यह वायु शीत होनेके निमित्तसे हिमाचलकी ओर जारही है) और कोमल २ आमोंकी मंजरियोंको देखकर आनन्दित होकर कोकिल 'कुहू २' ऐसी अपनी मधुर और मनोहर वाणी बोल रहे हैं ॥ २ ॥

उन्मीलन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्याधूतचूतांकुर-
क्रीडत्कोकिलकाकलीकलकलैरुद्गीर्णकर्णज्वराः।
नीयन्ते पथिकैःकथंकथमपि ध्यानावधानक्षण-
प्राप्तप्राणसमासमागमरसोल्लासैरमीवासराः ३

भा० टी०—(आम्रकी मंजरियोंसे) बाहर निकलते हुए रसके लोभी भ्रमरोंसे कम्पित आम्रकी मंजरी पर क्रीडा करनेवाले कोकिल की मधुर और मनोहर वाणी से मानो संताप उत्पन्न हो गया है ऐसे (वसन्तके) दिनों में ध्यान से चित्त को एकाग्र कर क्षणमात्र चित्त में अपनी प्राणप्यारीके समागम सुखके आनन्द से विरहीजन

किसी किसी प्रकारसे समय बिताते हैं ॥ ३ ॥

अनेकनारीपरिरम्भसम्भ्रम- ।
स्फुरन्मनोहारिविलासलालसम् ॥
मुरारिमारादुपदर्शयन्त्यसौ ।
सखीसमक्षं पुनराह राधिकाम् ॥

भा० टी०—अनेक गोपिकाओं के आलिंगनके मनोहर विलास से आलसी श्रीकृष्णचन्द्र के समीपही से जाती हुई दूर हीसे साक्षात् दिखलाती हुई कोई सखी राधिकासे फिर बोली ॥ ४ ॥

चौथा प्रबन्ध—रामकरी राग

रूपक ताल ॥

चन्दनचर्चितनीलकलेवरपीतवसनवनमाली ॥ केलिचलन्मणिकुण्डलमण्डित गण्डयुगस्मित-शाली ॥ हरिरिह मुग्धवधूनिकरे विलासिनि विलसति केलिपरे ॥ ध्रु० ॥

भा० टी०—हे प्रिये ! राधिके चन्दन से सुशोभित, श्यामवर्ण वाले, पीताम्बर तथा वनमाला धारी, चंचल और रत्न जड़ित कुंडलोंसे शोभायमान कपोल

(गाल) वाले, और मंद २ मुस्क्याते हुए श्रीकृष्णचन्द्र यहां नवीन और क्रीडामें तत्पर गोपिकाओंके समूहमें विलास कर रहे हैं ॥ १ ॥

पीनपयोधरभारभरेण हरिं परिरभ्य सरागम् ॥ गोपवधूरनुगायति काचिदुदञ्चितपञ्चमरागम् ॥ २ ॥

भा० टी०—हे राधे! कोई गोपाङ्गना श्रीकृष्णको प्रेम पूर्वक ऊँचे स्तनोंसे आलिंगन करके श्रीकृष्ण के पीछे २ ऊँचे स्वर वाले पंचमस्वरसे गाती हैं ॥ २ ॥

कापिविलासविलोलविलोचनखेलनजनितमनोजम् । ध्यायति मुग्धवधूरधिकं मधुसूदनवदनसरोजम् ॥ ३ ॥

भा० टी०—हे राधे! कोई सुन्दर गोपवनिता कटाक्ष युक्त चंचल नेत्रोंके संचारसे काम पीड़ित श्रीकृष्णचन्द्र के मुखारविन्दका अधिक ध्यान करती है ॥ ३ ॥

कापिकपोलतले मिलितालपितुं किमपिश्रुतिमूले। चारु चुचुम्ब नितम्बवती दयितं पुलकैरनुकूले ॥ ४ ॥

भा० टी०—कोई नितम्बवाली गोपी कुछ कानमें कहनेके छलसे श्रीकृष्ण के रोमांचित कपोलों को बड़ीही सुन्दरतासे चुम्बन किया ॥ ४ ॥

केलिकलाकुतुकेन च काचिदमुं यमुनाजलकूले ॥ मञ्जुलवञ्जुलकुञ्जगतं विचकर्षकरेण दुकूले ॥ ५ ॥

भा० टी०—हे राधे ! कोई गोपी सुन्दरी यमुना जी के तटपर, सुन्दर वेतसलता के निकुजमें केलि करने की इच्छा से श्रीकृष्णके वस्त्र (पीताम्बर) को खींचने लगी ॥५॥

करतलतालतरलवलयावलिकलितकलस्वनवंशे । रासरसेसहनृत्यपरा हरिणा युवतिः प्रशशंसे ॥ ६ ॥

भा० टी०—हे राधे ! रासक्रीडामें श्रीकृष्ण के साथ नाचने वाली किसी गोपवधूकी श्रीकृष्णने अधिक प्रशंसा की कि, तुमने करताल देनेके समय अपने कंगनों की ध्वनि उनकी मुरलीकी ध्वनिके साथ मिलाय दिया ॥ ६ ॥

श्लिष्यति कामपिचुंबति कामपि रमयति कामपि रामाम् । पश्यतिसस्मितचारु परामप ॥

गच्छतिवामाम् ॥ ७ ॥

भा० टी०—हे राधे ! श्रीकृष्णचन्द्रजी किसी गोप बामाको आलिंगन करते हैं, किसी गोपबालाका चुम्बन करतेहैं, किसी गोपरमणी के साथ रमण करते हैं, किसी को मन्द २ मुसक्यानसे देखते हैं और किसीके पीछे २ चलते हैं ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदमद्भुतकेशवकेलिरहस्यम् ॥ बृन्दावनविपिने ललितं वितनोतु शुभानि यशस्यम् ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे चतुर्थः प्रबन्धः ॥ ४ ॥

भा० टी०—श्रीजयदेव कवि वर्णित यशको देनेवाला यह भगवानका वृन्दावन में अद्भुत क्रीडा का रहस्य भक्तजनोंका कल्याण करै ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्द भाषाटीकायां चतुर्थः प्रबन्धः ॥ ४ ॥

विश्वेषामनुरञ्जनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवरश्रेणीश्यामलकोमलैरुपनयन्नङ्गैरनङ्गोत्सवम् ॥ स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीभिरभितः प्रत्यङ्गमालिङ्गितः । शृङ्गारः सखिमूर्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीडति ॥ १ ॥

भा० टी०—हे सखि (राधे !) अनुराग (प्रेम, भक्ति स्नेह,) के वशीभूत होकर सकल संसारको आनन्द देते हुए नीलकमलोंके समान श्याम तथा कोमल अंगोंसे कामदेवके उत्साहको बढ़ाते हुए, चारों ओर अपनी इच्छा पूर्वक व्रजवनिताओंसे रमण किये हुए, सब अंगों में आलिंगित मूर्त्तिमान शृंगार के समान श्रीकृष्णचन्द्र वसन्तऋतुमें (व्रजवनिताओंके साथ) क्रीडा कर रहे हैं । "इन्दीवरश्रेणी श्यामलैः,, यह विशेषण पद 'श्याम-मोभवतिशृंगारः सितोहासः प्रकीर्त्तितः, इस प्रमाणसे शृंगार रसका स्वरूप श्याम है और श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं श्याम हैं इसीलिये "शृंगारः सखि मूर्त्तिमानिव,, कहा है ॥ १ ॥

रासोल्लासभरेण विभ्रमभृतामाभीरवामभ्रु-वामभ्यर्णंपरिरभ्य निर्भरमुरःप्रेमान्धया राधया॥ साधुत्वद्वदनंसुधामयमिति व्याहृत्य गीतस्तुति-व्याजादुद्भटचुम्बितः स्मितमनोहारी हरिः पातुवः ॥ २ ॥

अब कवि भक्तोंको आशिर्वाद देते हैं—

भा० टी०—रासक्रीडाके आनन्दसे विभ्रम युक्त (शृंगार रसमें निमग्न) गोपांगनाओंके सम्मुखहीमें प्रेमसे अन्धी (विह्वल) राधिकाने "तुम्हारा सुन्दर मुख

अमृत मय है, यों कहकर और गीतकी प्रशंसाके छलसे उद्भट दृढ़ता पूर्वक चुम्बन किया।। इस प्रकारकी चुंबनमें चतुराई देखकर मन्द मुसक्यानसे चित्तको हरण करने वाले श्रीकृष्ण भक्तजनोंकी रक्षा करें॥ २॥

इति श्री गीतगोविन्द भाषाटीकायां सामोददामोदरो नाम प्रथमः सर्गः॥ १॥

द्वितीयः सर्गः।

विहरति वने राधासाधारणप्रणये हरौ
विगलितनिजोत्कर्षादीर्ष्यावशेन गतान्यतः॥
क्वचिदपि लताकुञ्जे गुञ्जन्मधुव्रतमंडलीमुख-
रशिखरे लीना दीनाप्युवाच रहः सखीम्॥१॥

भा० टी०-सकल गोपियोंमें बराबर प्रेम रखनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र जब वृंदावनमें रासक्रीड़ा करते थे उस समय राधाजी अपने इतभाग्यसे ईर्षाके वशमें होकर अर्थात् अन्य गोपियोंकी क्रीड़ा श्रीकृष्णके साथ न सहकर (श्रीकृष्णका तो सभी पर एकसा प्रेम है परंतु राधाने यह समझा कि हम पर श्रीकृष्णका प्रेम नहीं है) जहां भ्रमरों की मण्डली वृक्षोंके शिखर पर गूंज रही है ऐसे लता कुंजमें छिपगई और दुःखता होकर भी अपनी प्रिय सखीसे एकांतमें बोली॥१॥

अथ पांचवां प्रबन्ध गुर्जरी राग रूपक ताल ॥

संचरदधरसुधामधुरध्वनिमुखरितमोहनवंशम् ॥ चलितदृगञ्चलचञ्चलमौलिकपोलविलोलवतंसम् ॥ रासे हरिमिह विहितविलासम् ॥ स्मरति मनो मम कृतपरिहासम् ॥ ध्रु० ॥

भा० टी०—हे सखि ! अधर सुधासेभी बढ़कर मधुर ध्वनिसे परिपूरित और सकल जनोंको मोहन करनेवाली वंशीको बजानेवाले, (अर्थात् कामी जनोंको अधर सुधा से बढ़कर कोईभी वस्तु मीठा नहीं लगती यहां श्रीकृष्ण और राधिका दोनोंही कामुक हैं अतः राधिकाके कथनानुसार अधरामृतसे भी बढ़ी चढ़ी वंशीमें मिठास पाई गई क्योंकि, जो जिसको अधिक प्रिय वस्तु है वही यदि उससे बढ़कर बतावै तबही उसकी ठीक प्रशंसा जाननी चाहिये) कटाक्षवाले, वंशी बजानेके समय चंचल मुकुट और कपोलों पर चचल कुंडलवाले, विलासी और मेरे संग हास्यकारी श्रीकृष्णचन्द्रको मेरा चित्त ध्यान करता है ॥ १ ॥

चन्द्रकचारुमयूरशिखण्डकमंडलवलयितकेशम् ॥ प्रचुरपुरन्दरधनुरनुरञ्जितमेदुरमुदिरसुवेशम् ॥ २ ॥

भा० टी०—हे सखि ! चित्र सुन्दर मयूरके पक्षोंसे अपने केशोंको कंगनके समान गूँथनेवाले अर्थात् केशोंमें मयूर का पंख गूँथे हुए हैं जैसे गोलाकार कंगन होता है अतएव वहुत इन्द्रधनुषों से चित्रित श्याम घटाके समान शरीरवाले (श्रीकृष्णचन्द्रने जो मयूर पक्ष धारण किये हैं वह इन्द्रधनुषके तुल्य हैं और स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र श्याम मेघके सदृश हैं) "श्रीकृष्णको मेरा चित्त ध्यान करता है यह पूर्वोक्त पद सर्वत्र अन्वित है ॥ २ ॥

गोपकदम्बनितम्बवतीमुखचुम्बनलम्भित लोभम् ॥बन्धुजीवमधुराधरपल्लवमुल्लसितस्मित शोभम् ॥ ३ ॥

भा० टी०—हे सखि ! गोप समूहोंको वनिताओंके मुख चुम्बनके लोभी, और वन्धुजीव (दुपहरिया) के पुष्पके समान लाल. ओष्ठरूपी पल्लव (कोमल पत्र) वाले और मन्द २ मुसक्यानसे सुशोभित श्रीकृष्णका मैं ध्यान करती हूं ॥ २ ॥

विपुलपुलकभुजपल्लववलयितवल्लवयुवति सहस्रम्॥करचरणोरसि मणिगणभूषणकिरणवि भिन्नतमिस्रम् ॥ ३ ॥

भा० टी०—हे सखि ! विशाल और रोमांचित तथा-

नवीन वसन्त कालीन पत्रोंके समान भुजाओंसे गोपाङ्ग-नाओंका आलिंगनकारी और हाथ पैरें और वक्षःस्थल में धृत (बहुमूल्य हीरकादि मणियोंसे जड़ित) आभूष-णों की छिटकती हुई किरणोंसे अन्धकारको नाश करनेवाले श्रीकृष्णका मैं चितसे ध्यान करती हूं ॥ ४ ॥

जलदपटलचलदिन्दुविनिन्दक चन्दनतिलक ललाटम् ॥ पीनपयोधरपरिसरमर्दननिर्दयहृद-यकपाटम् ॥ ५ ॥

भा० टी०—जिस श्रीकृष्णने स्याम मेघकी घटाके बीच चलते हुए चन्द्रमाके समान अपने मस्तकमें मलया-गिर चन्दन लगाया है, और जिनका विशाल हृदय पीन कुचोंके प्रान्त भागोंको मर्दन करनेमें निर्दयी है, (जब श्रीकृष्णचन्द्र गोपियोंके स्तनोंको मर्दन करते हैं तब गोपि-यां अति विह्वल हो जाती हैं परन्तु उनकी श्रीकृष्ण एक भी नहीं सुनते और उनके कुचोंको निर्दयीके समान मर्दन (करतेही जाते हैं) ऐसे श्रीकृष्णको मैं हृदय से ध्यान करती हूं ॥ ५ ॥

मणिमयमकरमनोहरकुण्डलमण्डितगण्ड मुदारम् । पीतवसनमनुगतमुनिमनुजसुरासुर वरपरिवारम् ॥ ६ ॥

भा० टी०—जिन श्रीकृष्णचन्द्रके सुन्दर कपोलोंपर मणि समूहोंसे जड़ित, मकराकृत और मनोहर कुण्डल सुशोभित हैं और जो भक्तजनोंके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं, तथा पीताम्बर धारण किये हुए हैं, और जिनके मुनि, मनुष्य, देवता और दैत्य ही श्रेष्ठ परिवार (कुटुम्बी) हैं ऐसे श्रीकृष्ण का मैं चित्तसे ध्यान करती हूँ ॥६॥

विशदकदम्बतले मिलितं कलिकलुषभयं शमयन्तम् । मामपि किमपि तरङ्गदनङ्गदृशा मनसा रमयन्तम् ॥ ७ ॥

भा० टी०—निर्मल (सुन्दर) कदंब वृक्षके नीचे मिले हुए, कलियुग सम्बन्धी पापोंके भयको शान्त करनेवाले और कटाक्ष पातसे तथा अपने हृदयसे हमको भी रमण करानेवाले श्रीकृष्णको मैं चित्तसे ध्यान करती हूं ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमतिसुन्दर मोहनमधुरिपुरूपम् । हरिचरणस्मरणं प्रति संप्रातिपुण्यवतामनुरूपम् ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे पञ्चमः प्रबन्धः ॥ ५ ॥

भा० टी०-श्री जयदेव कविका बनाया हुआ, अतिसुन्दर और मोहन करने वाले मधुरिपु श्रीकृष्णचन्द्रकी

छविको वर्णन करनेवाला यह काव्य श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंको स्मरण करनेवाले पुण्यात्मा भक्तजनोंके लिये आनन्ददायी होय ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीगीतगोविन्द भाषाटीकायां पञ्चमः प्रबन्धः ॥



गणयति गुणग्रामं भ्रामं भ्रमादपिनेहते।
वहति च परितापं दोषं विमुञ्चति दूरतः।
युवतिषु चलत्तृष्णे कृष्णेविहारिणि मां विना।
पुनरपिमनोवामंकामंकरोति करोमि किम् ॥१॥

भा० टी०—हे सखि ! अन्य गोप वनिताओंमें अभिलाष युक्त और मेरे विना रासक्रीड़ा करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके विषयमें मेरा मन अवश्य (कुटिल) होता हुआ भी श्रीकृष्णही की इच्छा करता है। मैं क्या करूं और मेरा मन, श्रीकृष्ण के अपराधी होने पर भी उनकी गुणावलीको भ्रमसे भी भूलनेकी चेष्टा नहीं करता किंतु उन्हींकी गुणावलीको सुनकर अत्यन्त संतुष्ट होता है, और जो हमको उन्होंने छोड़ दिया है इस तिरस्कारसे भी मेरा मन(कोसों) दूर है ॥ १ ॥

अथ षष्ठप्रबन्धो मालवरागेण एकताली
ताले गीयते।

निभृतनिकुञ्जगृहं गतया निशि रहसि
निलीय वसन्तम्॥ चकितविलोकितसकल-
दिशा रतिरभसभरेण हसन्तम्॥ १॥ सखि
हे केशिमथनमुदारम्॥ रमय मया सह
मदनमनोरथभावितया सविकारम्॥ ध्रु०॥

छठाँ प्रबंध—मालवराग—एकताला।

भा० टी०—चुपचाप निकुंजगृहमें आई हुई बारम्बार इधर उधर देखने वाली (कोई देख न ले) मेरे साथ रात्रिमें एकांतमें छिपकर विहार करनेवाले, रतिके उत्साहसे मधुर २ हँसनेवाले, केशीनाम दैत्य के बधकारी, उदार चरित्र और कामपीड़ित श्रीकृष्णके साथ हमको मिलाय दे॥ १॥

प्रथमसमागमलज्जितया पटुचाटुशतैरनु
कूलम्॥ मृदुमधुरस्मितभाषितया शिथिलीकृत
जघनदुकूलम्॥ २॥

भा० टी०—हे सखि पहिले २ समागम के समय के तरह लज्जाके बशमें होनेवाली, और कोमल २ मधुर

मुसुकयान के साथ कोमल २ मधुर २ भाषिणी, मेरे साथ बड़ी चतुरतासे सैकड़ों प्रसंगोंके वाक्य कहनेवाले और मेरी जंघा के वस्त्र हटानेवाले श्रीकृष्णको मुझ से मिलाय दे ॥ २ ॥

किसलयशयननिवेशितया चिरमुरसि ममैव शयानम् ॥ कृतपरिरम्भणचुम्बनया परिरभ्य कृताधरपानम् ॥ ३ ॥

भा० टी०—हे सखि! कोमल २ नवीन २ पत्तोंकी शय्या रचनेवाली और श्रीकृष्णचन्द्रको आलिंगन कर उनके मुखको चुम्बन कारीके साथ, तथा मेरेही वक्षःस्थल (हृदय) के ऊपर चिरकाल तक शयनकारी और हमको आलिंगन कर मेरे अधरको पान करनेवाले श्रीकृष्णको मेरे साथ मिलाय दे ॥ ३ ॥

अलसनिमीलितलोचनया पुलकावलिललितकपोलम् ॥ श्रमजलसिक्तकलेवरया वरमदनमदादतिलोलम् ॥ ४ ॥

भा० टी०—हे सखि! रतिके आनन्दमें उत्पन्न हुए आलस्यसे नेत्रोंको मूंदनेवाली और रतिके परिश्रमसे पसीनोंके बिन्दुओंसे भीगे हुए शरीरवाली जो मैं हूं मेरे साथ, रोमांचयुक्त और सुन्दर कपोलवाले और उत्तम

कामदेवके अति आनन्दसे अति चञ्चल श्रीकृष्णको मिलाय दे ॥ ४ ॥

कोकिलकलरवकूजितया जितमनसिज-तन्त्रविचारम् ॥ श्लथकुसुमाकुलकुन्तलया नखलिखितघनस्तनभारम् ॥ ५ ॥

भा० टी०—हे सखि ! रतिके समय कोकिलके कण्ठके समान अस्फुट (साफ नहीं) शब्दोंको उच्चारण करने वाली, और रतिके परिश्रमसे ढीली पुष्पोंसे गुथी हुई अलकावलीवाली मेरे साथ, कामदेवके सिद्धान्त शास्त्र कोकको जीतनेवाले, और मेरे कठोर स्तनोंको अपने नखोंसे विदारणकारी श्रीकृष्णको मिलाय दे ॥ ५ ॥

चरणरणितमणिनूपुरया परिपूरितसुरत वितानम् ॥ मुखरविशृंखलमेखलया सकचग्रह चुम्बनदानम् ॥ ६ ॥

भा० टी०—हे सखि ! रतिके समय पैरोंकी मणि जड़ित पाजेव और करधनीके शब्दोंके करनेवाली मेरे साथ, रतिके विस्तारको सम्पूर्ण करनेवाले और मेरे केशपासको पकड़कर चुम्बन करनेवाले श्रीकृष्णको मिलाय दे ॥ ६ ॥

रतिसुखसमयरसालसया दरमुकुलितनयन संरोजम्। निःसहानिपतिततनुलतया मधुसूदन मुदितमनोजम् ॥ ७ ॥

हे सखि! रति के सुख के समय आलस्युक्ता और बिना सामर्थ्य के मुरझाई हुई शरीररूपी लतावाली मेरे साथ, रति के आनन्द से नेत्र रूपी कमलों को मीचने वाले मधुनाग दैत्य के विनाशक, और उद्दीपित (जगा हुआ) कामदेव वाले श्रीकृष्ण को मिला दे ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिदमतिशयमधुरिपुनिधुवनशीलम्। सुखमुत्कण्ठितराधिकया कथितं वितनोतु सलीलम् ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे षष्ठः प्रबन्धः ॥ ६ ॥

भा० टी०—श्रीजयदेव कवि निर्मित, श्रीकृष्णकी रति का वर्णन करने वाला, उत्कंठित राधिका से कहा हुआ यह गीतगोविन्द भक्तजनोंके आनन्दको देवे ॥८॥

इति गीतगोविन्द भा० टी० षष्ठः प्रबन्धः।

—:※:—

अधुना ऽत्युत्कण्ठया सख्या नीयमाना सा गोपीगणवृतं कृष्णं दृष्ट्वा परावृत्य सखीमाह—

हस्तस्रस्तविलासवंशमनृजुभ्रूवल्लीमद्बल्लवी
वृन्दोत्सारिदृगन्तवीक्षितमतिस्वेदार्द्रगण्डस्थल
म्मामुद्वीक्ष्य विलज्जितस्मितसुधामुग्धाननं का-
नने गोविन्दंव्रजसुन्दरीगणवृत पश्यामिहृष्या-
मिच ॥ १ ॥

गोपीगणोंसे घिरेहुए श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर और
वहांसे लौटकर राधिका अपनी सखीसे कहती है।

भा० टी०—हे सखि ! टेढी भौंह वाले गोपाङ्गनाओं
के तिरछे कटाक्षसे देखेगये व्रजवनिताओंसे घिरे हुए और
हमको देखकर अधिक लज्जायुक्त मुसकयानसे सुशोभित
मुखवाले तथा हमको देखकर जिनके हाथोंसे मुरली और
लकुटी गिरपड़ी है ऐसे श्रीकृष्णको मैं देखती हूं और आन-
न्द में मग्न होती हूं ॥ १ ॥

पुनः विभावयन्नाह—

दुरालोकस्तोकस्तवकनवकाशोकलतिका
विकाशः कासारोपवनपवनोऽपि व्यथयति ॥
अपिभ्राम्यद्भृङ्गीरणितरमणीया न मुकुल प्रसू-
तिश्चूतानां सखि शिखरिणीयं सुखयति॥२॥

भा० टी०—हे सखि ! यह नवीन अशोक लताओंके छोटे २ गुच्छोंका खिलना तालावोंके किनारे पर बगीचोंकी वायु भी हमको दुःख दे रही है यहां तालाव के रहने से ठंढा पन, बगीचोंसे सुगन्ध और ठंढा पन और सुगन्धके आनेहीसे मन्दत्व स्वयंही आजाता है कारण, जोरसे चलनेसे सुगन्ध उड़जाता है अथवा वृक्षोंके गाढ़िनतासे भी मन्दत्व आजाता है । वायु वर्णनमें शातित्व, (ठंढापन) मन्दत्व, (धीमापन) और सुगन्ध होना अत्यावश्यक है इन तीनोंमें एकके भी न रहनेसे काव्यमें दोष समझा जाता है) और यह जो गोवर्धन पर्वत पर आमों के वृक्षों की मंजारियों हैं जिनके ऊपर भौंरियां मनोहर गान कर रही है ये भी हमको सुख नहीं देती हैं ।

साकूतस्मितमाकुलाकुलगलद्धम्मिल्लमुल्लासित
भ्रूवल्लीकमलीकदर्शितभुजामूलार्द्धदृष्टस्तनम् ।
गोपीनांनिभृतांनिरीक्ष्यललितांकांचिच्चिरंचिंत
यन्नंतर्मुग्धमनोहरोहरतुवःक्लेशंनवःकेशवः ॥ २ ॥

इति श्रीकविराजश्रीजयदेवकृतगीतगोविन्दे महाकाव्ये अक्लेश केशवो नाम द्वितीयः सर्गः २

भा०टी०—अभिप्रायसे युक्त मुसकान वाले अत्यन्त अस्तव्यस्त होकर खुलीहुई केशपास वाली सुशोभित

भौंह रूपी लतावालीोंकमी* ।मससे भुजा केश आधा हाथ और कुच दिखानेवाली गोपियों के भावोंको देखकर किसी सुन्दरी (राधिका) को अपने अन्तःकरणमें चिरकालतक ध्यानकारी, (अर्थात् इन सब गोपिकाओंका उपरोक्त भाव देखने से राधिका महारानी इनके स्मरणमें हो आई और यह यों विचारने लगे कि राधिका की सुन्दरता के समान इनमें सुन्दरता नहीं है) मोह में मग्न और हृदय हारी तरुण श्रीकृष्ण हे भक्तवृन्द ! आप लोगों के क्लेश को हरें ॥ ३ ॥

इति श्रीगीतगोविन्द भाषाटीकायां अक्लेश केशवो नामः द्वितीयः सर्गः२

॥ तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

कंसारिरपि संसारबासनाबन्धशृंखलाम् ।
राधामाधाय हृदये तत्याज वृजसुन्दरीः ॥ १ ॥

भा० टी०—कंस के शत्रु श्रीकृष्ण ने भी संसार की बासनाओं को बांधने के लिए जंजीररूपी श्री राधिकाजी को

*-कापिकुन्तलसंव्यान संयमव्यपदेशतः । बाहुमूलं स्तनौ नाभि-पङ्कजं दर्शयेत्स्फुटं ॥ जृम्भते स्फोट यत्यङ्गमित्यादि नायिकानामनुराग चेष्टितानि ।

अपने हृदय में रख कर सकल व्रज की रमणियों को छोड़ दिया।

पुनः किं कृतवान्-

इतस्ततस्तामनुसृत्य राधिका
मनङ्गबाणव्रणखिन्नमानसः ॥
कृतानुतापः स कलिन्दनन्दिनी-
तटान्तकुञ्जे निषसाद माधवः ॥२॥

भा० टी०—इधर उधर अनेक स्थानों में श्रीराधिका जी को ढूंढ़ कर कामदेव के बाणों से अत्यन्त परिपीडित चित्त हो कर और पश्चात्ताप करते हुए यमुना जी के तट के समीप कुंज भवन में श्रीकृष्णचन्द्र बैठ गये ॥ २ ॥

अथ सप्तमप्रबन्धो गुर्जरीरागेण प्रतिमण्ठताले गीयते।

मामियं चलिता विलोक्य वृतं वधूनिचयेन ॥
सापराधतया मयापि न वारितातिभयेन ॥१॥
हरिहरि हतादरतया गता सा कुपितेव ॥ध्रु०॥

अथ सातवां प्रबन्ध-गुर्जरी राग-प्रतिमण्ठ ताल।

बड़े दुःख का विषय है कि हमको गोपियों के समूहमें बैठे हुये देख कर (अपना निरादर जान कर) वह

राधिका चली गई और हम इसी लिये अपराधी होने के कारण भय से रोक न सके और यहां से वह (राधिका) क्रोध में होकर चली गई।

किं करिष्यति किं वदिष्यति सा चिरं विरहेण ॥
किं जनेन धनेन किं मम जीवितेन गृहेण ॥२॥

वह राधा हमारे बहुत समयतक वियोगमें पड़कर विरहाग्नि के शांत्यर्थ क्या क्या उपाय करेगी और क्या २ हमको बुरा या भला कहेगी अब उस राधिका के बिना जन, (कुटुम्ब वा अन्य गोपीजन) धन, प्राण, और गृह ये सर्व व्यर्थ हैं। अर्थात् उसके विना सर्व प्रिय प्राणही को मैं कुछ नहीं समझता कारण जब सब सुख की मूल राधिका ही हमारे पास नहीं है तब धनादिक तो उसके डाल पात हैं मूल के नष्ट हो जाने से डाल पात तो स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं ॥२॥

चिंतयामि तदाननं कुटिलभ्रु रोपभरेण ॥
शोणपद्ममिवोपरि भ्रमताकुलंभ्रमरेण ॥३॥

भा० टी०—अधिक क्रोधके वश टेढ़ी भौंह वाली उस राधिकाका मुख मानों रक्त कमलपर भौंरे घूमते हों ऐसी सुन्दर शोभायुक्त राधिकाके मुखारविंदको मैं ध्यान करता हूं ॥३॥

तामहं हृदि संगतामनिशं भृशं रमयामि ॥
किं वनेऽनुसरामि तामिह किं वृथा विलपामि॥४

भा० टी०—यदि मैं उस हृदयास्थित राधिकाके साथ बारम्बार और अत्यन्त रमण करता हूं तो अब उसको वनमें ढूंढने से क्या प्रयोजन है और उसके लिये विलाप करना व्यर्थ है अर्थात् जो हृदयहीमें स्थित है उसका ढूंढना वा उसके लिये विलापादि करना भी व्यर्थही है ॥ ४ ॥
हृदि संगतां तां प्रत्याह—

तन्वि खिन्नमसूयया हृदयं तव कलयामि ॥
तन्न वेद्मि कुतो गतासि न तेन तेऽनुनयामि ॥५॥

भा० टी०—हे सूक्ष्माङ्गि राधिके! मैं यह अनुमान करता हूं कि तुम्हारा चित्त ईर्षासे दुःखी होगया है और मैं यह भी नहीं जान सकता कि तू यहांसे क्यों चली गई तुमको प्रणाम कर मनाता हूं

दृश्यसे पुरतो गतागतमेव मे विदधासि ॥
किं पुरेव ससंभ्रमं परिरम्भणं न ददासि ॥६॥

हे सुन्दरी! तूं मेरे सम्मुख केवल आती जाती दिखाई देती है। पहलेकी समान तूं मुझे अति शीघ्र आलिङ्गन क्यों नहीं करती। विरहियोंको रात दिन

उमीका ध्यान रहनेसे आगे, पीछे, दहिने, बायें वही सर्वत्र दीखती है ॥ ६ ॥

क्षम्यतामपरं कदापि तवेदृशं न करोमि ॥
देहि सुन्दरि दर्शनं मम मन्मथेन दुनोमि ॥७॥

भा०टी०—हे सुन्दरी ! क्षमा करो अब ऐसा कभी भी नहीं करूंगा अब दर्शन दो क्योंकि कामदेव से अति पीड़ित हूं ॥ ७ ॥

वर्णितं जयदेवकेन हरेरिदं प्रवणेन ॥
किंदुविल्वसमुद्रसम्भवरोहिणीरमणेन ॥ ८ ॥
इति श्रीगीतगोविन्दे सप्तमः प्रबन्धः ॥ ७ ॥

भा०टी०—श्रीकृष्ण को प्रणाम करनेवाले, और किन्दुविल्व कुलरूपी समुद्रमें चन्द्रमाके समान जयदेव कविने यह वर्णनाकिया ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे सप्तमः प्रबन्धः ॥ ७ ॥

इदानीं काम एव मे दुःखं प्रयच्छतीति तमेवापाकम्भे आह

हृदि बिसलताहारो नायं भुजङ्गमनायकः ॥
कुवलयदलश्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युतिः ॥

मलयजरजो नेदं भस्म प्रियारहिते मयि।
प्रहर न हरभ्रान्त्यानङ्ग क्रुधा किमु धावसि॥१॥

भा० टी०—कामदेवही हमको इस समय दुःख दे रहा है अतः कामदेवहीका तिरस्कार करते हैं। हे कामदेव! मैं राधिका का वियोगी हूं हमारे ऊपर महादेवजीकी भ्रांति से अपने बाणोंका प्रहार मत करो यह बारम्बार हमारे ऊपर चढ़ाई व्यर्थ क्यों कर रहे हो। मैं महादेवजी नहीं हूं यह मेरे गलेमें कमलोंकी जड़ोंका (तन्तुका) हार है किन्तु यह सर्पराज नहीं है, कण्ठमें यह नील कमलों की पांती है किन्तु यह हलाहलकी छवि नहीं है, और यह प्रियाकी विरहाग्निकी शान्तिके लिये चन्दनकी धूली है, किन्तु भस्मी नहीं है। श्रीमहादेवजीके चिन्ह जानकर हमको महादेवजी समझ और अपने पूर्व बैरको स्मरण करके हमको क्यों व्यर्थ दुःख दे रहे हो॥ १॥

पाणौ मा कुरु चूतसायकममुं मा चापमारोपय।
क्रीडानिर्जितविश्व मूर्छितजनाघातेन किं पौरुषम्
तस्या एव मृगीदृशो मनसिजप्रेङ्खत्कटाक्षानिल-
ज्वालाजर्जरितं मनागपि मनो नाद्यापि संधुक्षते॥२

भा० टी०—हे बिना परिश्रमसे समस्त संसारको जीतनेवाले कामदेव! आप इन आमोंकी मंजरीरूप बाणों

को अपने हाथोंमें मत लीजिये और यदि हाथमें भी लोतो धनुष मत चढ़ाइये क्योंकि हे मनोभव ! मूर्छित आदमी को मारने में क्या बड़ा पराक्रम है क्योंकि उस राधिका के चंचल कटाक्ष रूपी अग्नि के ज्वालासे टुकड़े २ हुआ हूं (जला हुआ) मेरा मन आजतक भी स्वस्थ नहीं हुआ हूं।

भ्रूपल्लवो धनुरपाङ्गतरङ्गितानि।
वाणा गुणःश्रवणपालिरिति स्मरेण॥
तस्यामनङ्गजयजङ्गमदेवताया-।
मस्त्राणि निर्जितजगन्ति किमर्पितानि॥३॥

हे कामदेव ! यदि तुम कहोकि, इसमें मेरा क्या अपराध है क्योंकि, जब २ राधिकाके कटाक्षादिकोंका स्मरण करते हो तब २ आपको दुःख होता है, सो यह भी अपराध आपहीका है। कारण, आपने शस्त्र राधाजीको अर्पण कर दिये हैं देखिये !! भ्रूलता रूपी धनुष है, चंचल कटाक्ष बाण है कर्णपाली ही गुण (धनुष की डोरी) है। ये सर्व जगतको जीतनेवाले शस्त्र चलने फिरनेवाली जय लक्ष्मी स्वरूप श्रीराधिकाजीमें तुमने क्यों दे दिया है तो क्या यह आपका अपराध नहीं है॥३॥

भ्रूचापे निहितः कटाक्षविशिखो निर्मातु मर्मव्यथां श्यामात्मा कुटिलः करोतु कबरीभारोऽपि मारोद्यमम् मोहं तावदयं च तन्वि तनुतां विम्बाधरो रागवान् सद्वृत्तस्तनमण्डलस्तव कथं प्राणैर्मम क्रीडति ॥ ४ ॥

भा० टी०–अब हृदयमें समाईहुई राधिकासे अपने दुःखका वर्णन करते हैं हे कृशांगि ! तुम्हारा भौं रूपी धनुषमें स्थापित कटाक्षरूपी वाण मेरे मर्म्मोंको पीड़ा दे तो दे (क्योंकि, वाणका यह स्वभावही है कि वह लग जानेसे दुःख देताही है) और यह श्याम और कुटिल केशोंके पास भी कामदेवको जगावे, (क्योंकि, जो कुटिल और जो अन्तःकरणके काले होते हैं उनकी यही दशा रहती है कि, वे दूसरोंको दुःखही दिया करते हैं) और यह राग वाला (लाल) विम्बाधर, (कुन्दुरूके सदृश अधरोष्ठ,) मोहको बढावै तो बढावे क्योंकि, रागी, विषयी, मोहको बढाताही है, यह सब पूर्वोक्त ठीकही है] परन्तु यह तुम्हारा सद्वृत (सुन्दर गुलाई वाला वो अच्छे आचरण वाला] स्तन मन्डल हमारे प्राणोंके साथ क्यों खेल रहा है । यह बड़े आश्चर्य की बात हैं क्यों जो अच्छे आचरणवाले हैं उनके लिखे

दूसरोंका प्राण लेना तो दूर रहा वे किसीके भी प्राणों को कुछ भी पीड़ा देना नहीं चाहते और ये कुच हमारे प्राणोंके ग्राहक क्यों बनगये हैं ॥ ४ ॥

तानि स्पर्शसुखानि ते च तरलाःस्निग्धा दृशो विभ्रमा स्तद्वक्त्राम्बुजसौरभं स च सुधा-स्यन्दी गिरां वक्रिमा ॥ सा बिम्बाधरमाधुरीतिविषयासङ्गेऽपि मन्मानसं तस्यां लग्न समाधि हंत विरहव्याधिः कथं वर्तते ॥ ५ ॥

भा० टी०— जो सुन्दरीरमणी संगमें होते हैं, वेही स्पर्शके सुख हमको होते हैं, वेही चंचल प्रेम पूर्ण कटाक्ष पात है, वही मुखारविन्दकी सुगन्धी है, वही अमृत इससे परिपूर्ण वाणीकी वक्रिमा [व्यंगोक्ति, टेढापन] है और वही लालवर्ण अधरोष्ठकी मधुरता है, इन रूप, रस, गन्ध और स्पर्शादि विषयोंकी तरफ होनेपर भी मेरा मन उस राधिकाके ध्यानमें लगा है तो भी बड़े खेदकी बात है कि यह विरहकी वेदना कैसे होरही है क्योंकि ध्यानयुक्त योगियोंको किसी प्रकारकी वेदना नहीं होती ॥ ५ ॥

तिर्यक्कण्ठविलोलमालितरलोत्तंसस्य वंशो-च्चरद्गीतस्थानकृतावधानललनालक्षैर्न संलक्षि-

ताः ॥ संमुग्धे मधुसूदनस्य मधुरे राधामुखेन्दौ मृदुस्पन्दं कन्दलिताश्चिरं ददतु वः क्षेमं कटाक्षोर्मयः ॥ ६ ॥

इति श्रीकविराज श्रीजयदेवकृत गीतगोविन्द महाकाव्ये मुग्धमधुसूदनो नाम तृतीयः सर्गः।३

भा० टी०—बजती हुई बंशी गाने के पदों में चित्त देने से अन्य गोपांगनाओं से देखी नहीं गई, और राधिका के सुन्दर मुख रूपी चन्द्रमा में अप्रकट भाव से धीरे धीरे चला कर खड़ी हुई ग्रीवा (गरदन) को तिरछी करने से चंचल मुकुट और कुण्डलवाले श्रीकृष्णचन्द्र की कटाक्षोंकी लहरी (पांति) आप लोग भक्त जनों का कल्याण कारिणी होंय ॥ ६ ॥

इति गीतगोविन्दभाषा टीकायां

मुग्ध मधुसूदनो नाम

तृतीयः सर्गः॥३॥

—:॰:॰:॰:—

चतुर्थः सर्गः।

—:❀—❀:—

यमुनातीरवानीरनिकुञ्जे मन्दमास्थितम् ॥
प्राह प्रेमभरोद्भ्रान्तं माधवं राधिका सखी॥१॥

भा० टी०—यमुना जी के तीर पर बेतों के कुंज में उदासीन बैठे हुए और प्रेम की अधिकता से उद्विग्न चित्त श्रीकृष्णचन्द्र से राधिका की सखी बोली ॥ १ ॥

उक्तश्लोकार्थं गीतेनाह—

अथ अष्टमप्रबन्धः कर्णाटकरागेण एकताली तालं गीयते।

निन्दति चन्दनमिन्दुकिरणमनु विन्दति खेदमधीरम्॥ व्यालनिलयमिलनेन गरलमिव कलयति मलयसमीरम् सा विरहे तव दीना॥ माधव मनसिजविशिखभयादिव भावनया त्वयि लीना॥ ध्रु० ॥ २ ॥

अथ आठवां प्रबन्ध—कर्णाटक राग—एकताली ताल—

भा० टी०—हे माधव! विरह से अति दीन वह रा-

षिका काम बाणों के भय से मानो तुम्हारे ही में लीन हो गई । अपने को श्रीकृष्ण के हृदय में गई हुई जान कर " अब हमको कामदेव के बाणों से कुछ भी भय नहीं है क्योंकि मैं श्रीकृष्ण के हृदय में निवास करती हूं । ऐसी २ भावनासे वह रहती है और चन्दनकी निन्दा करती है, चन्द्रमाकी शीतल किरणोंको अधीर होकर अत्यन्त कष्टदायी समझती है और मलय पर्वत के [जिसमें चन्दनके वृक्ष होते हैं] सुगन्धि वायुको सर्पोंका निवासस्थान होनेसे उनके विषाग्निरूप श्वासके मिलानेसे उस वायुको विषके समान मानती है यद्यपि ये सब वस्तु शीतल है तो भी आपके विरह से उसको दुःखद है ॥ १ ॥

अविरलनिपातितमदनशरादिव भवदवनायविशालम् ॥ स्वहृदयमर्मणि वर्म करोति सजलनलिनीदलजालम् ॥२॥

भा० टी०—निरन्तर लगानेवाले कामदेव बाणोंके भयसे मानों उनके हृदयस्थित आपकी रक्षाके लिये निज हृदयरूपी मर्म स्थानमें जलसे आर्द्र करर के कमलके पत्तोंका कवच [बखतर] बनाती है । जैसे योद्धा संग्राममें लोहे आदिका बाणोंके भयसे कवच धारण करते हैं वैसेही कामदेवके बाणोंके भयसे हृदयस्थित जो श्री कृष्ण

हैं उनकी रक्षाके लिये कमलके पत्तोंका कवच बनाकर श्रीकृष्णकी रक्षा करती है यहां कमलिनीके पत्तोंका कवच बनाना युक्तही है कारण कामदेव भी कुसुमशर है अर्थात् काम जनित दाहको हृदयपर कमलके पत्ते रख शान्त करती है।

कुसुमविशिखशरतल्पमनल्पविलासकला कमनीयम् ॥ व्रतमिव तव परिरम्भसुखाय करोति कुसुमशयनीयम् ॥ ३ ॥ सा. वि.

भा० टी०-हे श्रीकृष्णचन्द्र! वह राधिका पुष्पोंकी शय्या बनाकर उसपर सोती है, क्योंकि, आपही के आलिङ्गन सुखके लिये नाना प्रकारकी विलास कलाओंसे सुन्दर कामदेवके बाणोंकी शय्या बनाकर मानो बड़ा भारी व्रत कर रही है, ईश्वर प्राप्तिके निमित्त योगी भी बाणोंकी शय्या पर सोता है और इससे यह भी सिद्ध होता कि, विरहाग्निकी शान्तिके लिये वह पुष्पोंकी शय्या पर सोती है परन्तु वह भी आपके बिना उसको बाणोंके समान लगती है ॥ ३ ॥

वहति चलितविलोचनजलधरमाननकमलमुदारम् ॥ विधुमिव विकटविधुन्तुददन्तदलनगलितामृतधारम् ॥ ४ ॥ सा. वि.

भा० टी०–हे श्रीकृष्णचन्द्र! वह राधिका बहते हुए अश्रु (आंसू) जल से परिपूर्ण सुन्दर मुखारविन्द को अति कठोर राहुके दन्तों से दलित चन्द्रमा के मुखसे बहती हुई अमृत धारा के समान धारण करती है अर्थात् आप के वियोग से आंसुओं को बहाती रहती है॥ ४॥

विलिखति रहसि कुरङ्गमदेन भवन्तमसमशरभूतम्॥ प्रणमति मकरमधो विनिधाय करे च शर नवचूतम्॥ ५॥ सा० वि०

भा० टी०–हे माधव! वह राधा कामदेवके समान रूपधारी आपका चित्र कस्तूरीसे एकान्तमें बैठकर लिखती है और उसके नीचे मकरका आकार बनाकर हाथमें आम्रकी मंजरी देती है और प्रणाम किया करती है जब आपका चित्र लिख चुकती हैं तब अति व्याकुलता से जो मकर ऊपर लिखना चाहिये था वही नीचे लिख देती है।॥ ५॥

प्रतिपदमिदमपि निगदति माधव तव चरणे पतिताहम्॥ त्वयि विमुखे मयि सपदि सुधानिधिरपि तनुते तनुदाहम्॥ ६॥ सा०वि०

भा० टी०—फिर इधर उधर घूमती फिरती बार २ यह कहती है कि, हे मम प्राणप्रिय! मैं आपके

चरणोंमें गिरती हूँ कि आपके विमुख होनेसे सुधानिधि (अमृतकी खानि, चन्द्रमा) भी मेरे शरीरको जला रहा है ॥ ६ ॥

ध्यानलयेन पुरः परिकल्प्य भवन्तमतीव दुरापम् ॥ विलपति हसति विषीदति रोदिति चञ्चति मुञ्चति तापम् ॥ ७ ॥

भा० टी०—हे श्री कृष्णचन्द्र ! बड़े कष्टसे प्राप्त होने योग्य आपका ध्यान करके अपने सम्मुख एक आपकी प्रतिमा कल्पनाकर उसके आगे विलाप करती है हंसती है, विषाद करती है रोतीहै और वहांसे हट जाती है कि अब आलिङ्गन होगा अतः कुछ क्षणके लिये दुःखको छोड़ देती है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिदमधिकं यदि मनसा नटनीयम्।हरिविरहाकुलवल्लवयुवतिसखीवचनं पठनीयम् ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे अष्टमः प्रबन्धः ॥ ८ ॥

भा० टी० श्रीजयदेवकविके काव्यका यदि मनसे अधिक आनन्द लेना होतो श्रीकृष्णचन्द्रके विरहसे व्याकुल श्रीराधिकाजीकी प्रिय सखी वचनोंको पढ़ो ॥ ८ ॥

इति श्रीगीत० अष्टमः प्रबन्धः ॥ ८ ॥

आवासो विपिनायते प्रियसखीमालापि जालायते। तापोऽपि श्वसितेन दावदहन ज्वालाकलापायते॥ सापि त्वद्विरहेण हन्त हरिणीरूपायते हा कथम्। कन्दर्पोऽपि यमायते विरचयञ्छार्दूलविक्रीडतम्॥ १॥

भा० टी० हे श्रीकृष्णचन्द्रजी! आपके विरह से राधिकाको गृह वनके समान प्रिय सखियां जंजाल के समान, श्वास की गर्मी भी दावानलके समान और वह राधिका भी हरिणीके समान जान पड़ती है और अति खेदकी बात है कि, कामदेव भी व्याघ्रके समान उस राधिकारूपी हरणीके लिये यमराज क्यों हो रहा है अर्थात् अब मैं कहांतक कहूं आपके विना राधिका अब नहीं बच सक्ती॥ १॥

अथ नवमः प्रबन्धो देशाख्यारगेणएकतालीताले गीयते।

स्तनविनिहितमपि हारमुदारम्॥ सा मनुते कृशतनुरिव भारम्॥१॥राधिका विरहे तव केशव॥ ध्रु०॥

अथ नवम प्रबन्ध देशराग एकताला ॥ ९ ॥

भा० टी०—हे श्रीकृष्णचन्द्र ! आप के वियोगमे कृश शरीरवाली वह राधिका स्तनों पर बहुमूल्य हारको भी भार (बोझ) ही के समान मानती है । आपके बिना उसको हीरोंका हार भी नहीं सुहाता ॥ १ ॥

सरसमसृणमपि मलयजपंकम् ॥
पश्यति विषमिव वपुषि सशंकम् ॥२॥ राधिका०

भा०टी०—हे केशव ! वह राधिका आपके विरह से अति शीतल चिकना शरीरमें लिप्त मलयागिर चन्दन को भी शङ्काके साथ विषके समान देखती है ॥ २ ॥

श्वसितपवनमनुपमपरिणाहम् ॥
मदनदहनमिव वहति सदाहम् ॥३॥ राधिका०

भा० टी०—हे केशव ! वह राधिका बडे लम्बे २ सांशोंको कामाग्निके समान धारण करती है अर्थात् आपके वियोगमे गरम २ और बड़े २ लम्बे २ सांस लिया करती है ॥ ३ ॥

दिशि २ किरति सजलकणजालम् ॥
नयननलिनमिवविगलितनालम् ॥४॥ राधिका०

भा० टी०—हे केशव ! वह राधिका अश्रुजलोंसे परीपूर्ण बिनडंठीवाले कमलों के सदृश अपने नेत्रों को सर्व

दिशाओं में फेंकती है अर्थात् आपके दर्शनकी इच्छासे आंसू भरे नयनोंसे चारोंओर देखती है कि श्रीकृष्णचन्द्र आये तो नहीं ॥ ४ ॥

नयनविषयमपि किसलयतल्पम् ॥
कलयति विहितहुताशविकल्पम् ॥५॥राधिका०

भा० टी०—हे केशव ! वह राधिका नयनोंके सामने भी नवीन २ कोमल पत्तोंकी शय्यामें अग्निका संदेह करती है पत्तोंको ताम्रवर्ण देखकर उसको यह संदेह हो जाता है कि, इस शय्यामें अग्नितो नहीं बिछी हुई है॥५॥

त्यजति न पाणितलेन कपोलम् ॥
बालशशिनमिव सायमलोलम् ॥ ६ ॥राधिका०

भा० टी०—हे केशव ! वह राधिका सायंकाल अपनी हथेली पर स्थापित अपने कपोलोंके निश्चल और बाल चन्द्रमाके समान नहीं छोड़ती अर्थात् अपने हथेली पर अपने गालोंको रख कर शामको रात बिताने की चिन्ता में डूबी रहती है ॥ ६ ॥

हरिरिति हरिरिति जपति सकामम् ॥
विरहविहितमरणेव निकामम् ॥ ७ ॥ राधिका०

भा० टी०—हे केशव ! आपके विरह से वह राधिका मरण अवस्थामें पड़ीहुईके समान, यथेष्ट, "हरि हरि,,

इस मंत्रका जप करती है जैसे कोई मरण समयमें "हरि हरि,, जपता है कि हमको उस जन्ममें इस मंत्रके जपनेसे हरि अवश्य मिलेंगे इसी प्रकार राधिका भी श्रीकृष्णके नामको जप करती है कि हमको श्रीकृष्णचन्द्र इस जन्ममें नहीं मिलेंगे तो उस जन्ममें तो अवश्यही मिलेंगे ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिति गीतम् ॥
सुखयतु केशवपदमुपनीतम् ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे नवमः प्रबन्धः ॥ ९ ॥

भा० टी०—श्रीकृष्ण के पदों में समर्पित यह जयदेव कविका गीत आपलोगोंको सुख देवे ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे भाषा टीकायां नवमः प्रबन्धः ॥ ९ ॥

सा रोमाञ्चति सीत्करोति विलपत्युत्कम्पते ताम्यति। ध्यायत्युद्भ्रमति प्रमीलति पतत्युद्याति मूर्च्छत्यपि ॥ एतावत्यतनुज्वरे वरतनुर्जीवेन्न किं ते रसात् । स्ववैद्यप्रतिम प्रसीदसि यदि त्यक्तोऽन्यथा हस्तकः ॥ १ ॥

भा० टी०—हे अश्विनीकुमार (स्वर्गके वैद्य) के तुल्य वैद्यराज श्रीकृष्णचन्द्र ! उस राधिकाको रोमांच उठते हैं, शी २ करती है, विलाप करती है, शरीर कँपता

है ग्लानि (हर्षनाश) होता है, ध्यान करती है, भ्रम होता है, नेत्रोंको बन्दकर लेती है, (भूमिमें) गिरती है, उठती है, और मूर्च्छित भी हो जाती है इस प्रकारका बढ़ा चढ़ा हुआ उसको कामज्वर है सो वह आपही के रस (शृंगार रस) देनेसे क्या नहीं जीवेगी ? आपके मिलने से अवश्य ही जीवेगी, अतः हे श्रीकृष्णचन्द्रजी ! आप प्रसन्न होइये तो वह मरण से बच जायगी और यदि आप प्रसन्न न होइयेगा तो उसकी हस्त चेष्टा भी बन्द हो जायगी अर्थात् वह इस समय बोल नहीं सकती परन्तु इशारे से काम होताहै वह भी काम बन्द हो जायगा । यहां रस शब्द श्लिष्ट (दो अर्थ में) है जैसे सान्निपात ज्वरमें सद्वैद्य के 'रस' (चन्द्रोदयादि) रस प्रदान करने से रोगी बच सक्ता है, इसी प्रकार राधिका को भी कामज सन्निपात ज्वर के लक्षण हो गये हैं "कामजेचित्तविभ्रंशस्तन्द्रालस्यम भोजनमित्यादि माधवनिदाने ,, यदि यहां पर भी कामज सान्निपातमें श्रीकृष्णरूपी सद्वैद्य रस (शृंगार) को प्रदान करें तो यह भी बच सक्ती है और इस ज्वरको यही औषधी भी है । किसी भाषाके कविने कहा भी है "जा वैदा घर आपने, तू क्या जानै सार । आशिक चंगे विना किये, विन देखे दीदार" इत्यादि ॥ १ ॥

पुनरुपेन्द्रवज्रावृत्तेनाह—

स्मारतुरान्दैवतवैद्यहृद्य त्वदङ्गसङ्गामृत-

मात्रसाध्याम् ॥ विमुक्तबाधां कुरुषे न राधा-मुपेन्द्रवज्रादपि दारुणोऽसि ॥ २ ॥

भा० टी०—हे देवताओंके वैद्य [अश्विनी कुमार] के सदृश सुन्दर! केवल आपके आलिङ्गनरूपी अमृतही से साध्य, उस कामातुर राधिकाको यदि रोग रहित नहीं करियेगा तो हे उपेन्द्र! (वामनस्वरूप) आप वज्रसे भी अति कठोर हैं ॥ २ ॥

एवम्विधापि राधा त्वच्चिन्तनेनैव जीवतीत्याह—

कन्दर्पज्वरसञ्ज्वरा कुलतनोराश्चर्यमस्याश्चिरम् । चेतश्चन्दनचन्द्रमःकमलिनीचिन्तासु सन्ताम्यति ॥ किन्तु क्षान्तिवशेन शीतलतनु त्वामेवमेकं प्रियम् । ध्यायन्ती रहसि स्थिता कथमसौ क्षीणा क्षणं प्राणिति ॥ ३ ॥

भा० टी०—कामज्वरके सन्तापसे व्याकुल शरीर-वाली राधिकाका मन चन्दन, चन्द्रमा और कमलिनी इन्हींका ध्यान करनेहीमे बहुत देर तक दुःखित हो जाता है, यह अतिही आश्चर्य है। परन्तु शीतल शरीर और असाधारण प्रेमी आपहीका ध्यान करती हुई एकान्तमें बैठी दुर्बलाङ्गी वह राधिका केवल क्षान्तिके वशमें होकर किसी प्रकार से जीती है अर्थात् आपहीके स्मरणसे वह प्राणोंको बचाए हुए है ॥ ३ ॥

पुनरपि वर्द्धापननिभावेन विरहोद्रेकं पुष्पिताग्रावृत्तेनाह—

क्षणमपि विरहः पुरा न सेहे ।
नयननिमीलनखिन्नया यया ते ॥
श्वसिति कथमसौ रसालशाखाम् ।
चिरविरहेण विलोक्य पुष्पिताग्राम् ॥४॥

भा० टी०—हे श्रीकृष्णचन्द्र ! जो राधिका पहले नेत्रों की पलक गिरानेमें भी दुःखी क्षणभर भी आपका विरह नहीं सह सक्ती थी, वही राधिका फूली हुई आमकी मंजरियोंको देखकर आपके चिर विरहमें कैसे जी सक्ती है अर्थात् जो साधारण समय में आपका वियोग नहीं सह सक्ती थी वही आज इस वसन्त ऋतुको देखकर आपके वियोगको किस प्रकार सहेगी अब आपके बिना उसका जीवन दुर्घट है ॥ ४ ॥

वृष्टिव्याकुलगोकुलावनरसादुद्धृत्य गोवर्धनं
बिभ्रद्वल्लवसुन्दरीभिरधिकानन्दाच्चिरं चुम्बितः ॥
दर्पेणैव तदर्पिताधरतटी सिन्दूरमुद्राङ्कितो
बाहुर्गोपतनोस्तनोतु भवतः श्रेयांसि कंसद्विषः ॥५॥

इति श्रीकविराज श्रीजयदेवकृते गीतगोविन्दे महाकाव्ये स्निग्धमाधवो नाम चतुर्थः सर्गः ४

भा० टी०—वर्षासे व्याकुल गोकुलकी रक्षाके अनुराग से गोवर्द्धन नामक पर्वतको उखाड़कर धारण करने वाले और अति आनन्द पूर्वक व्रजकी गोपाङ्गनाओंसे चिरकालतक चुम्बित (आज भी कोई हाथोंसे अद्भुतकार्य्य करता है तो उसके हाथ चूमे जाते हैं) अतएव अभिमानके वश में होकर गोपियोंने जो अपने लाल ओठोंको (बाहु पर) थापन किया वही लाल वर्ण मानो उस पर (बाहु पर) सिन्दूरका तिलक किया हो ऐसा गोपवेशधारी कंसारी भगवान श्रीकृष्णचन्द्रकी बाहु आपलोगोंकी रक्षा करें ॥५॥

इति गीतगोविन्दे भाषाटीकायां स्निग्धमाधवोनाम

चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः ।

अहमिह निवसामि याहि राधा-
मनुनय मद्वचनेन चानयेथाः ॥
इति मधुरिपुणा सखी नियुक्ता-
स्वयमिदमेत्य पुनर्जगाद राधाम् ॥ १ ॥

भा० टी०—अब श्रीकृष्ण की भेजी हुई सखी राधिका से बोली, कि हे राधे ! हमने श्रीकृष्णचन्द्रजी

ने यों कहा है कि, मेरे कहनेसे तुम राधिकाजी को जाकर सांत्वना दो (समझावो) और यहां बुलालावो जबतक वह नहीं आवेगी तबतक मैं इसी निकुञ्ज गृहमें रहूंगा इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र की भेजी हुई सखी राधिका के पास स्वयं आकर और श्रीकृष्ण का संदेशा कहकर राधिकासे फिर बोली ॥ २ ॥

अथ दशम प्रबन्धो वराडीरागेण रूपकताले गीयते ।

वहति मलयसमीरे मदनमुपनिधाय ॥
स्फुटति कुसुम निकरे विरहिहृदयदलनाय॥१॥
तव विरहे वनमाली सखि सीदति ॥ध्रु०॥

दशवां प्रबन्ध वराडी राग रूपकताल ॥ १० ॥

भा० टी०—हे सखी ! कामदेवकी सहाय करके जब मलयानिल (दक्षिणकी वायु) बहती है और विरहियोंके हृदयको विदारण करनेके लिये पुष्पोंकी कलियां खिलती हैं तब हे राधे ! तुम्हारे वियोगसे वनमाली श्रीकृष्णचन्द्र-जी अत्यन्त दुखी होते हैं ॥ १० ॥

दहति शिशिरमयूखे मरणमनुकरोति ॥
पतति मदनविशिखे विलपति विकलतरोऽति
॥ २ ॥ तववि०

भा० टी०—हे राधे ! जब चन्द्रमा अपनी किरणोंसे जलाता है तब श्रीकृष्णचन्द्रजी मरणासन्न हो जाते हैं और जब तुम्हारे विरहमें कामदेवके बाण उनके ऊपर गिरते हैं तब वे अत्यन्त विकल होकर विलाप करते हैं।

ध्वनति मधुपसमूहे श्रवणमपिदधाति ॥ मनसि वलितविरहे निशिनिशि रुजमुपयाति ॥३॥ तव वि०

भा० टी०—हे राधे ! जिस समय भौंरोंका झुण्ड गूंजता है उस समय श्रीकृष्णचन्द्रजी अपने कानोंको बन्द कर देते हैं (जिसमें उनका शब्द सुनाई न दे) और जब तुम्हारा विरह उनको स्मरण हो आता है तब उनको प्रति रात्रिमें बड़ा कष्ट होता है ॥

वसति विपिनविताने त्यजति ललितमपि धाम ॥लुठति धरणिशयने बहु विलपति तव नाम ॥४॥ तववि०

भा० टी०—हे राधे ! तुम्हारे विरहमें श्रीकृष्णचन्द्रजी सुन्दर २ अपने गृहोंको छोड़कर अति सघन और अति विशाल वनोंमें निवास करते हैं, भूमिहीकी शय्यापर लोटते रहते हैं और तुम्हारा नाम ले ले कर बारम्बार विलाप करते रहते हैं ॥४॥

रणति पिकसमवाये प्रतिदिशमनुयाति ॥
हसति मनुजनिचये निजविरहमपलपति नेति ॥
५ ॥ तवविं०

भा०टी०–हे राधे ! कोकिलाओंका समूह जब "कुहू२" करके बोलता है तब उस शब्द के पीछे तुम्हारा शब्द जानकर चारो ओर घूमते हैं । श्रीकृष्णचन्द्रजीकी यह दशा देखकर जब मनुष्यगण हँसते हैं । तब अपने विरहको श्रीकृष्णचन्द्रजी छिपाते हैं कि कुछ नहीं है ।

स्फुरति कलरवरावे स्मरति भणितमेव ॥ तव रति
सुखविभवे बहु गणयति सुगुणमतीव ॥ ६ ॥ तववि०

भा० टी०—हे राधे ! जब पक्षियों के सुन्दर और मधुर शब्द सुनते हैं तब श्रीकृष्णचन्द्रको तुम्हारा भाषित (रति समयका शब्द) स्मरण हो आता है और जब तुम्हारी सुरतिके आनन्दका अनुभव होता है तब " इस आनन्दसे बढ़कर दूसरेमें आनन्द नहीं है ऐसा कह कर इस आनन्दको वारम्वार गिनते हैं (मानते हैं) ॥ ६ ॥

त्वदभिधशुभदमासं वदति नरि शृणोति ॥
तमपि जपति सरसं परयुवतिषु न रतिमुपैति ॥

भा० टी०—हे राधे ! जब कोई मनुष्य, कल्याणदाता तुम्हारे नामवाले राधा (वैशाख) मासका नाम लेता

है तब उसको श्रीकृष्णचन्द्र बड़े प्रीति पूर्वक सुनते हैं और उसी नामको अत्यन्त प्रेम पूर्वक जपते भी हैं अतएव उनको दूसरी व्रज युवतियोंमें प्रीति नहीं होती ॥ ७ ॥

भणति कविजयदेव इतिविरहविलसितेन ।
मनसि रभसविभवे हरिरुदयतु सुकृतेन ॥८॥

इति श्रीगीतगोविन्दे दशमः प्रबन्धः ॥ १० ॥

भा० टी०—जयदेव कविके इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रके वियोगरूपी विलासका वर्णन करने पर अत्यन्त आनन्द युक्त जयदेव कविके चित्तमें पुण्यके प्रभावसे श्रीकृष्ण चन्द्रजी प्रकट होंय ॥ ८ ॥

इतिश्रीगीतगोविन्द भा० टी० दशम प्रबन्धः ॥१०॥

पूर्वं यत्र समंत्वया रतिपतेरासादिताः सिद्धयस्तस्मिन्नेव निकुञ्जमन्मथमहातीर्थे पुनर्माधवः ॥ ध्यायंस्त्वामनिशं जपन्नपि तवैवालापमन्त्रावलिं भूयस्त्वत्कुचकुम्भनिर्भरपरीरम्भामृतं वाञ्छति ॥१॥

भा० टी०—सखी राधिकासे फिर कहती है, हे राधे जिस निकुंजमें पहले तुम्हारे साथ श्रीकृष्णचन्द्रजीने कामदेवकी सिद्धि (चुम्बन आलिंगनादि) प्राप्तकी थी उसी कामदेवके महातीर्थ निकुंजमें बैठकर श्रीकृष्णचन्द्रजी रा-

दिन तुम्हारेही ध्यान और तुम्हारेही नामके अक्षरोंकी पंक्तिका जप करते हुये फिर आपके कुचोंको गाढ़ आलिंगन रूपी अमृतकी इच्छा करते हैं। जैसे ऋषि ईश्वरादिका ध्यान करता हुआ और उसीके नामका जप कर सिद्धि (अणिमादि) प्राप्त कर फिर अमृत (मोक्ष) की इच्छा करता है इसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रजी को भी जानो ॥ १ ॥

अथ एकादश प्रबन्धः केदाररागेण एकताली ताले गीयते।

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेषम्। न कुरु नितम्बिनिगमनविलम्बनमनुसर तं हृदयेशम् ॥ १ ॥ धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली ॥ गोपीपीनपयोधरमर्दनचञ्चलकरयुगशाली ॥ ध्रु० ॥

ग्यारहवां प्रबन्ध–केदार राग–एकताला ॥ १ ॥

भा० टी०–हे राधे गोपियोंके पीन [मोट २] कुचों के मर्दन करनेमें चंचल दोनों हाथवाले वनमाली श्रीकृष्ण चन्द्रजी जहां मन्द २ वायु बह रही है ऐसे यमुना-तीरके वनमें बैठे हैं अतः हे नितम्बिनि ; रतिके तत्वस्वरूप संकेत स्थल में प्राप्त कामदेवके समान वेषधारी ऐसे जो तुम्हारे

हृदयके स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रजी हैं उनके पास चलने में विलम्ब न करो ॥ १ ॥

नामसमेतं कृतसंकेतं वादयते मृदुवेणुम्‌ । बहु मनुते तनुते तनुसंगतपवनचलितमपि रेणुम्‌

भा० टी०—हे राधे ; तुम्हारे नामके संकेतसे [तुम्हारा नाम ले ले कर] मधुर स्वरसे श्रीकृष्णचन्द्रजी वंशीको बजा रहे हैं और वायुसे उड़ाई तथा तुम्हारे अंगोंसे स्पर्श करनेवाले धूलीके कणोंको भी बहुत समझते हैं ॥ २ ॥

पतति पतत्रे विचलति पत्रे शंकितभवदुपयानम्‌ । रचयति शयनं सचकितनयनं पश्यतितव पन्थानम्‌ ॥ ३ ॥

भा० टी०—हे राधे ; जब पक्षी उड़ते हैं तब उनकी आहटसे और पत्तों की खटखडाहटसे तुम्हारे आगमनकी आशंका करके चकित नयन [चौकन्ने] होकर तुम्हारे आगमनके मार्ग को देखने लगते हैं और सोने की तयारी करते हैं ॥ ३ ॥

मुखरमधीरं त्यजमञ्जीरं रिपुमिव केलिसुलोलम्‌ । चल सखिकुञ्जं सतिमिरपुञ्जं शीलयनीलनिचोलम्‌ ॥ ४ ॥

भा० टी०—हे राधे ! बहुत बाजनेवाले अतएव अधीर (मूर्ख) और केलि करनेके समय चंचल अतएव ये नूपुर (पाजब) शत्रुके समान हैं इनको यहीं पर छोड़ा और नील वस्त्रोंको धारण कर अति घोर अंधकार युक्त कुंजमें चलो ॥ ४ ॥

उरसि मुरारेरुपहितहारे घन इव तरल-बलाके ॥ ताडिदिव पीते रतिविपरीते राजसि सुकृतविपाके ॥ ५ ॥

भा० टी०—हे पीत वर्णवाली राधे ! मेघोंमें बक-पंक्तिके समान हीराके हारोंसे सुशोभित और पुण्य से प्राप्त श्रीकृष्णचन्द्रजीके हृदय पर विपरीत* रतिमें बिजलीके शोभाको प्राप्त करो ॥ ५ ॥

विगलितवसनं परिहृतरशनं घटय जघन-मपिधानम् । किसलयशयने पंकजनयने निधि-मिव हर्षनिदानम् ॥ ६ ॥

भा० टी०—हे राधे नवीन २ कोमल पत्तोंकी शय्यापर शयन करनेके समय वस्त्र और करधनी रहित और निधि (खजाना) के समान आनन्दका आदि कारण

* विपरीत रति उस रति का नाम है जिसमें पुरुष नीचे रहता है और स्त्री ऊपर।

अपनी नग्न जंघाको श्रीकृष्णके जंघा से मिलावो ॥ ६ ॥

हरिरभिमानी रजनिरदानीमियमपियाति विरामम् । कुरु मम वचनं सत्वररचनं पूरय मधुरिपुकामम् ॥ ७ ॥

भा० टी–हे राधे ! मेरे कहे हुए वचनको शीघ्रतासे करो और श्रीकृष्णके मनोरथको शीघ्रही सम्पादन करो। श्रीकृष्णचन्द्रजी अभिमानी हैं शीघ्रता न करनेसे न जाने कुछ रुष्ट हो जायँ और इस समय रात्रि है सो भी बीती जा रही है (फिर सूर्य्योदय होनेसे अभिसारिका का समय भी नहीं रहेगा ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवे कृतहरिसेवे भणति परमरमणीयम् ॥ प्रमुदितहृदयं हरिमतिसदयं नमतसुकृतकमनीयम् ॥ ७ ॥

॥ इति श्रीगीतगोविन्द एकादशः प्रबन्धः ।

भा० टी०—हे भगवद्भक्तजनों ! श्रीकृष्णसेवा और अतिसुन्दरतासे इस पूर्वोक्त गीतके रचयितापर अति दयाकारी प्रसन्न चित्त और पुण्यसे भी अधिक श्रेष्ठ श्रीकृष्णजीको प्रणाम करो ॥ ७ ॥

॥इति श्रीगीतगोविन्द भाषा टीकायां एकादशः प्रबन्धः ॥

विकिरति मुहुः श्वासानाशाः पुरो मुहुरीक्षते
प्रविशतिमुहुः कुञ्जं गुञ्जन् मुहुर्बहुताम्याति ॥
रचयति मुहुः शय्यां पर्याकुलं मुहुरीक्षते । मदन
कदनक्लान्तः कान्ते प्रियस्तव वर्तते ॥ १ ॥

भा० टी०—हे सुन्दरी राधे, कामदेव की पीड़ासे पीड़ित तुम्हारे प्यारे श्रीकृष्णजी वारम्वार श्वासों को लेते हैं, वारम्वार दशों दिशाओंकी ओर निहारते हैं वारम्वार कुंजके बाहर आकर फिर बड़ बड़ाते हुये भीतर जाते हैं, वारम्वार दुःखित होतेहैं और वारम्वार शय्या की रचना करते हैं, और बड़ी व्याकुलता से वारम्वार फिर देखते हैं ।

त्वद्वाक्येन समं समग्रमधुना तिग्मांशुर-
स्तंगतो गोविन्दस्य मनोरथेन चसमं प्राप्तं तमः
सान्द्रताम् । कोकानां करुणस्वनेन सदृशी
दीर्घामदभ्यर्थना । तन्मुग्धे विफलं विलंबन-
मसौ रम्योऽभिसारक्षणः ॥ २ ॥

भा० टी०—हे मुग्धे राधिके ! ईर्षा और मानसे भरे हुए तुम्हारे वचनों के साथ २ सूर्यभी अस्त होगया अर्थात् मेरे वचनों का उत्तर कुछ भी नहीं दिया और

सूर्य [illegible] श्रीकृष्णजी के मनोरथों के साथ२ अन्धकार [illegible], अर्थात् श्रीकृष्णकी योंही विचारते [illegible] जारही है कि मेरी प्राण-प्यारी [illegible] चकई के रोदन के [illegible] अर्थात् चकवा चकई [illegible] विलाप करते हैं तौभी [illegible] विलाप नहीं होता इसी प्रकार मैं इतना कह रही हूं तौभी तुम्हारा मान नहीं छूटता अथवा जैसे चकवा चकई मिलनेके लिये विलाप करते हैं उसी प्रकार मैं भी तुम दोनों के मिलाप कराने के निमित्त इतना कह रही हूं अतएव हे राधे! सूर्यके अस्त होनेसे रात्रिका अन्धकार बढ़ जानेसे यही समय अभिसार (छिपकर प्रियके समीप जाना) का अत्युत्तम है अब विलम्ब न करके शीघ्रतासे चलो ॥ २ ॥
अभिसारे रसाधिक्यं भवतीत्याह—

आश्लेषादनुचुम्बनादनु नखोल्लेखादनुस्वा-न्तजात् । प्रोद्बोधादनुसम्भ्रमादनुरतारम्भादनु प्रीतयोः ॥ अन्यार्थङ्गतयोर्भ्रमान्मिलितयोः सभाषणैर्जानतो दम्पत्योर्निशि कोन कोन तमसि व्रीडाविमिश्रोरसः ॥ ३ ॥

भा० टी—हे राधे संकेत स्थानमें दूसरी स्त्री के लिये

दूसरा पुरुष और दूसरे पुरुष के लिये दूसरी स्त्री प्राप्त होती है तब मिलनेके समय तो अन्धकारके कारण परस्पर दोनोंही पहिचान नहीं सकते फिर वार्तालापसे परस्पर का ज्ञान होता है कि यह अमुक पुरुष है और यह अमुक स्त्री है जब इतना हो जाता है तब आलिंगन, उसके पीछे चुंबन, फिर कुचस्थानादिमें नखक्षतादि, पीछे कामोद्दीपन इसके अनन्तर आनन्ददायिनी रतिको आरम्भ फिर दोनोंही प्रिया और प्रियतमोंके लज्जासे संयुक्त कौन २ रस नहीं प्राप्त होते हैं अर्थात् अति आनन्दमें मग्न हो जाने से सभी रस प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

इदानींत्वल्लाभात्कृष्णः कृतार्थोभवत्वित्याह—

सभयचकितं विन्यस्यन्तीं दृशन्तिमिरे पथि ।
प्रतितरु मुहुः स्थित्वा मन्दं पदानि वितन्वतीम् ॥
कथमपि रहः प्राप्तमङ्गैरनंगतरंगिभिः ।
सुमुखिसुभगःपश्यन् सत्वामुपैतु कृतार्थताम् ॥ ४ ॥

भा० टी०–हे राधे ! अन्धकारयुक्त मार्गमें भय और चकित (चौकन्नी) दृष्टिसे देखती हुई वृक्षोंके नीचे बार बार ठहर २ कर पैरोंको रखती हुई कामदेवसे व्याप्त सर्वाङ्गोंसे किसी प्रकार (अति कठिनाईसे) चलकर उस संकेत स्थानमें प्राप्त हुई तुमको देखकर हे सुमुखि ! वह

सौभाग्यवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी कृतार्थ होजाँय ॥ ४ ॥

इदानींकविः सर्गान्ते भक्तजनमाशिषयति—

राधामुग्धमुखारविन्दमधपस्त्रैलोक्यमौलि-स्थली । नेपथ्योचितनीलरत्नमवनीभारावतारक्षमः ॥ स्वच्छन्दंव्रजसुन्दरीजनमनस्तोषप्रदोषश्चिरं । कंसध्वंसनधूमकेतुरवतुत्वाम्देवकीनन्दनः ॥ ५ ॥

भा० टी०—राधिका के मुखरूपी कमलके भ्रमर (जैसे कमल रसको भौंरा पान करता है वैसेही राधिकाके मुख रूपी कमलमें जो अधरामृतरूपी रस है उसको पीने वाले तीनों लोकोंका मुकुटस्वरूप जो वृन्दावन है उसके वेष रचनार्थ नीलम मणिके समान, पृथ्वीके भार (बोझ) उतारने में समर्थ, स्वच्छन्दतासे (निर्भय होकर) व्रजकी रमणियोंके मनको प्रसन्न करनेके निमित्त प्रदोष (सन्ध्या) स्वरूप (स्त्रियां प्रायः सन्ध्या वा सन्ध्याके अन्तरही प्रसन्न रहती हैं कारण वही समय कामोद्दीपन तथा उनके विनोदका है) और कंसको विनाश करनेमें धूमकेतु (पुच्छलतारा) के समान देवकीके नन्दन (श्रीकृष्ण) तुम्हारी रक्षा करैं ॥ ५ ॥

भाषा टीकायां पञ्चमः सर्गः।

षष्ठः सर्गः

अथतांगन्तुमशक्तां चिरमनुरक्तां लतागृहेदृष्ट्वा॥
तच्चरितंगोविन्दे मनसिजमन्दे सखी प्राह ॥१॥

भा० टी०—राधिकासे समस्त वार्त्ता कहकर सखी राधिका को जानेंगे असमर्थ और चिरकाल से अनुरागिणी देखकर कामदेव से पीडित श्रीकृष्णके समीप जाकर बोली ॥ १ ॥

अथ द्वादशः प्रबन्धो गुणकरीरागेण रूपकताले गीयते।

पश्यति दिशि दिशि रहसि भवन्तम् ॥
त्वदधरमधुरमधूनि पिवन्तम् ॥ १ ॥
नाथ हरे जयनाथ हरे ॥ सीदति राधा-
वास गृहे ॥ ध्रु० ॥

अथ बारहां प्रबन्ध गुणकरी राग रूपक ताल ॥ १२ ॥

भा० टी०—हे हरे! हे नाथ! अपने अधर रूपी मधुर मधु को पीते हुए आपको निकुंजमें बैठी हुई राधिका सर्व दिशाओंमें देखती रहती हैं और हे नाथ आप का जयहो

वह राधिका वास गृहमे आपके लिये दुःख पा रही हैं। नन्वेवं चेत्तर्हि किमिति नागतेत्यत आह—

त्वदभिसरणरभसेन वलन्ती ॥
पतति पदानि कियन्ति चलन्ती ॥२॥

भा० टी०—जब उसकी यह दशा है तो वह क्यों नहीं आई ? इस प्रश्नका उत्तर श्रीकृष्णको राधिकाकी सखा देती है हे नाथ ! तुम्हारे लिये जब उस राधिकाने चलन में उत्साह किया तबहीं कई एक पैर चलकर गिर पड़ी अर्थात् वह इस विरहसे इतनी दुर्बल होगई है कि यहां तक आही नहीं सक्ती ॥ २ ॥

हा ! कष्टमेव चेदशक्ता तर्हि कथं जीवतीत्यत आह—

विहितविशदबिसकिसलयवलया ॥
जीवति परमिह तवरतिकलया ॥ ३ ॥

भा० टी०—अत्यन्त कष्टका विषय है कि जब उसकी यह दशा है तो वह जीती कैसे है इसका उत्तर-कमलके अंकुर और पत्तोंके कंकण धारण करती है और केवल आपका रतिकी लालसाही से इस समय वह राधिका जीवित है और कोईभी उसको दूसरा सहारा नहीं है ।३।

मुहुरवलोकितमण्डनलीला ॥
मधुरिपुरहमिति भावनशीला ॥ ४ ॥

भा० टी०—हे नाथ! वह राधिका वारम्वार अपने आभूषणों के विलास को देखती है, आपके ऐसी अपने वेषकी रचना बनाकर या कहती है कि श्रीकृष्णचन्द्रजी मही हूँ इस प्रकार आ[illegible] भावना करती हुई जीवित है जीवनोंपाय में यह दू[illegible] है ॥ ४ ॥

तदेवाह—

त्वरितमुपैति न कथमभिसारम् ॥
हरिरिति वदति सखीमनुवारम् ॥ ५ ॥

भा० टी—हे नाथ! मेरे मन हरण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रजी इस संकेत-स्थलमें क्यों नहीं आते यों वार २ सखी से कहती रहती है ॥ ५ ॥

अपि च—

श्लिष्यति चुम्बति जलधरकल्पम् ॥
हरिरुपगत इति तिमिरमनल्पम् ॥ ६ ॥

भा० टी०—मेघके सदृश थोड़े अन्धकारको हरि समझ कर आलिंगन और चुम्बन करती है ॥ ६ ॥

भवति विलम्बिनि विगलितलज्जा ॥
विलपति रोदिति वासकसज्जा ॥ ७ ॥

भा० टी०—जब आप के आने में विलम्ब होता है तब

निर्लज्जा *वासकसज्जा वह राधिका होकर विलाप करती है।७।

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितम् ॥
रसिकजनं तनुतामतिमुदितम् ॥ ८ ॥

भा० टी०—यह श्रीजयदेव कविका बनाया हुआ गीत भगवत् प्रेमियोंको आनन्द दे ॥ ८ ॥

इति श्री गीतगोविन्दे द्वादश प्रबन्धः ॥ १२ ॥

इदानीं तस्यास्त्वदेकपरत्वमाह—

विपुलपुलकपालिः स्फीतसीत्कारमन्त- ।
जनितजाडिमकाकुव्याकुलं व्याहरन्ती ॥
तव कितव विधायामन्दकन्दर्पचिन्तां ।
रसजलनिधिमग्ना ध्यानलग्ना मृगाक्षी ॥ १ ॥

भा०टी०—हे धूर्त श्री कृष्णचन्द्रजी ! वह राधिका अत्यन्त काम चिन्ताको अपने हृदयमें धारण करके आपके ध्यानमें मग्न होजाती है। और उसी ध्यानमें उसको यह जान पड़ता है कि हमारे अंगोंसे श्रीकृष्णचन्द्रजीका स्पर्श हुआ अतः हर्षसे उसको सर्वांग रोमाञ्चित हो जाता है। फिर उसको उसी ध्यानमें यह ज्ञात होता है कि श्रीकृष्णजी हमारे अधर चुंबन और नखक्षतादि कर

* वासकसज्जा उसको कहते हैं जो पति का आगमन सुन कर अपना तथा वासगृह की तय्यारी करती हैं और न आने से दुःखी होती हैं।

रहे हैं ऐसा जानकर " सी सी" करने लग जाती है और उसके अन्तःकरणमें जड़ता समाजानेसे अति विह्वल होकर वह अति भयसे नहीं २ " ऐसा मतकरिये" इत्यादि वाक्योंको कहती हुई आपके शृंगार रस रूपी समुद्र में डूब जाती है ॥ १ ॥

अङ्गेष्वाभरणं करोति बहुशःपत्रेऽपिसञ्चारिणि।
प्राप्तंत्वांपरिशंकतेवितनुते शय्यांचिरन्ध्यायति॥
इत्याकल्पविकल्पतल्परचनासंकल्पलीलाशतं ।
व्यासक्तापिविनात्वयावरतनुर्नैषानिशांनेष्यति२

भा० टी०—हे श्रीकृष्णचन्द्रजी वह सुन्दरी राधिका पत्तों की खड़खड़ाहट सुन कर भी आप को आया जान हस्तपादिकों में आभूषण धारण करती है, और पुष्पादिकों से शय्याकी रचना करती है, और बहुत देर तक सोचती है इस प्रकार सैकड़ों संकल्प करती है (श्रीकृष्णचन्द्रजी जब आवेंगे तब मैं यों कहूंगी यों करूँगी और मानकर बैठ जाऊँगी यदि वे न मनावैंगे तो मैं बड़ी कठिनाइयों से मानूँगी इत्यादि) बातें विचारती हुई आपही विषय में मग्न है तथापि आपके विना रात नहीं बितावैगी अर्थात् यदि आप उससे इस समय नहीं मिलियेगा तो उसके प्राण पखेरू सूर्योदय तक उड़ जायँगे॥२॥

अधुना कविः सर्गान्ते भक्तानाशिषयति ।

किम्विश्राम्यासि कृष्णभोगिभवने भाण्डीर भूमीरुहि । भ्रातर्यासि न दृष्टिगोचरमितः सा नन्दनन्दास्पदम् ॥ राधाया बचनन्तदध्वगमुखान्नन्दान्ति के गोपतो गोविन्दस्य जयान्ति सायमतिथिप्राशस्त्य गर्भागिरः ॥ २ ॥

भा० टी०—सर्गान्त में कवि आशीर्वाद देता है । हे भाई बटोही ! भांडीर वट की भूमि में जो कृष्ण (सर्पका का निवास स्थान है वा भाग विलास करने वाले श्रीकृष्ण चन्द्रजी का घर है वहीं क्यों विश्राम करते हो यहां से जो दिखाई देता है और आनन्दमद नन्द जी के घर में क्यों नहीं चले जाते इस प्रकार के राधिका जी के वाक्य उस पाथिक के मुख से सुन कर उन वाक्यों को नन्दजी के सन्मुख छिपाने वाले श्रीकृष्णचन्द्रजी से उस पथिक की प्रशंसामें कही हुई वाणी जय युक्त हो इसका अर्थ यहां यह है कि कोई राही अपने विश्राम के लिए वट वृक्ष के नीचे गया उससे राधिका जी ने कहा कि भंडीर वट में श्री कृष्ण सर्प रहता है आप नन्द जी के गृह में जा कर विश्राम करो आप को वहां सर्व प्रकार की सुविधा होगी यही पूर्वोक्त वचनों को सुन कर श्रीकृष्णचन्द्र ने

विचारा कि हम लोगों की चतुराई कहीं नन्द जी न जान जायँ क्योंकि आज रात्रि में इसी भांडीरहीवट के नीचे राधिका से मिलने की हमने प्रतिज्ञा की है इसी से राधिका ने श्लिष्ट (दो अर्थ में) "कृष्ण भोग भवनै.ऐसा कहा है इसी कारण से श्रीकृष्णचन्द्र ने उस बात को गुप्त रखने के लिये उस पथिक की प्रशंसा की कि आप का स्वागत हुआ है महाराज आपने बड़ी कृपा करी इत्यादि ॥ ३ ॥

इति गीतगोविन्दे भाषा टी० महाकाव्ये
वासकसज्जावर्णने सोत्कण्ठवैकुण्ठो
सप्तमः सर्गः ।

अधुना चन्द्रोदयव्याजेन राधाया विरहव्य-
थाधिक्यं वर्णयन्नाह—

अत्रान्तरे च कुलटाकुलवर्त्मपात-
सञ्जातपातक इव स्फुटलाञ्छनश्रीः ॥
वृन्दावनान्तरमदीपयदंशुजालै-
र्दिक्सुन्दरीवदनचन्दनबिंदुरिन्दुः ॥ १ ॥

भा० टी०—इसके अनन्तर कुलटा (व्यभिचारिणी

स्त्रियोंके मार्गको रोकनेके पाप से मानो कलङ्कित और पूर्वदिशारूप रमणीके चन्दन विन्दुके समान चन्द्रमा अपने किरण समूहसे समस्त वृन्दावनको प्रकाशमान कर दिया अर्थात् चन्द्रोदय होगया ॥ १ ॥

प्रसरति शशधरबिम्बे विहितविलम्बे च माधवे मधुरा। विरचितविविधविलापं सा परितापं चकारोच्चैः ॥ २ ॥

भा० टी०—जब चन्द्रमाका बिम्ब ऊपरको चढ़ा आता था और श्रीकृष्णके आगमनमें विलम्ब हुआ तब श्रीकृष्णचन्द्रकी अनुरागिणी वह राधिका नाना प्रकारके विलाप करनेलगी और बहुत दुखी हुई ॥ २ ॥

विलापमेव गीतेनाह-

अथ त्रयोदशःप्रबन्धो गौडमालवरागेण प्रतिमण्ठताले गीयते।

कथितसमयेऽपि हरिरहह न ययौ वनम् ॥
मम विफलमेतदनुरूपमपि यौवनम् ॥
यामिहेकमिहशरणंसखीजनवचनवञ्चिता॥ध्रु०

तरहवां प्रबन्ध-गौड़ मालव राग प्रतिमंठताल ॥ १३ ॥

अब राधिकाजी गीतमें विलाप करती हैं कि रे मेरे

मन ! श्रीकृष्णचन्द्रजी कहे हुए समय पर भी इस वनमें नहीं आए, इसमें बड़ा भारी आश्चर्य वा खेद है, अब मेरा यह यौवन योग्य भी है तौभी श्रीकृष्णचन्द्रजीके बिना निष्फल है "श्रीकृष्णचन्द्रजी अभी आते हैं अभी आते हैं" यों कह २ कर सखियोंने हमको ठग लिया। अब मैं किसकी शरण जाऊं अर्थात् अब मेरा कोई भी रक्षक नहीं है जब विश्वासपात्र सखियोंनेही विश्वासघात किया तब तो अब मैं "कं" जलहीकी शरण जाऊंगी अर्थात् जलमेंही डूब कर मरूंगी ॥ १ ॥

यदनुगमनाय निशि गहनमपि शीलितम् ॥
तेन मम हृदयमिदमसमशरकीलितम् ॥ २ ॥

भा० टी०–जिस श्रीकृष्णचन्द्रजीके लिये मैंने इस घोर अन्धकारमयी रात्रिके समय इस घोर वनमें निवास किया उन्हीं श्रीकृष्णजीने मेरे हृदयमें कामदेवके बाणोंको गाड़ दिया।

मम मरणमेव वरमतिवितथकेतना ॥
किमिति विषहामि विरहानलमचेतना ॥ ३ ॥

भा० टी० अब मैं इस वनमें ज्ञानशून्य होकर विरह रूपी अग्निको कैसे सह सकी हूं और यह शरीर भी व्यर्थ है इससे अच्छा तो मरनाही है ३

ममहह विधुरयति मधुरमधुयामिनी ॥
कापि हरिमनुभवति कृतसुकृतकामिनी ॥ ४ ॥

भा० टी०—बड़े दुःख की बात है कि यह सुन्दर वसन्त की रात्रि हमको तो दुःख देरही है [क्योंकि, यह वसन्त की रात्रि श्रीकृष्णचन्द्रजीके बिना हमको नहीं सुहाती] और कोई अति पुण्य शालिनी गोपवनिता श्रीकृष्णचन्द्रजी के साथ आनन्द कर रही है ॥ ४ ॥

अहह कलयामि वलयादिमणिभूषणम् ॥
हरिविरहदहनवहनेन वहुदूषणम् ॥ ५ ॥

भा० टी० हाय !!! मैं मणियोंके कंकण इत्यादि आभूषणोंको श्रीकृष्णचन्द्रकी विरहाग्नि से दूषण स्वरूप मानती हूं (उचितही है क्योंकि, अग्नि के समीप रत्नादि जडित आभूषण दूषणही होजाते हैं और स्त्रियोंके आभूषणादि जबतक अपनी प्रियतमें नहीं देखैं तबतक उनको वे निष्फलही मानती हैं ५

कुसुमसुकुमारतनुमतनुशरलीलया ॥
स्रगपि हृदि हन्तिमामतिविषमशीलया ॥६॥

भा० टी०—पुष्पोंके समान कोमलांगी जो मैं हूं मुझे पष्पोंकी मालाभी अति दारुण कामदेव के

बाण की तरह मार रही है (अर्थात् कामदेव से पीडितको पुष्पों की मालाभी कामोद्दीपक होने के कारण दुःखप्रद मालूम पड़ती है) ॥ ६ ॥

अहमिह निवसामि न गणितवनवेतसा ॥
स्मरति मधुसूदनो मामपि न चेतसा ॥ ७ ॥

भा० टी०–मैंने तो श्रीकृष्णचन्द्रजीके लिये वन और वेतसकी क्यारियों को कुछ भी नहीं गिना और इसी वनमें निवासभी करती हूं और श्री कृष्णचन्द्रजीने हमको चित्तसे भी स्मरण नहीं किया (यहां आना तो दूर रहा)

हरिचरणशरणजयदेवकविभारती ॥
वसतु हृदि युवतिरिव कोमलकलावती ॥ ८ ॥
इति श्रीगीतगोविंदे त्रयोदशः प्रबन्धः ॥ १३ ॥

भा० टी०–श्रीकृष्णचन्द्रजी के चरणोंकी शरण मानने वाली जयदेव कविकी सुमधुर कला (साहित्य संगीतकला) से युक्त यह वाणी भक्तोंके हृदय में इस प्रकार निवास करे जैसे रसिकजनोंके हृदय में सुन्दरकला (शृङ्गार १६ कला) जाननेवाली युवती नायिका निवास करती है ॥ ८ ॥

इति श्री गी० गो० भा० टी० यां त्रयोदशः प्रबन्धः ॥

तत्किं कामपि कामिनीमभिसृतः किंवा कलाकेलिभिर्बद्धो बन्धुभिरन्धकारिणि वनोपांते किमु भ्राम्यति ॥ कान्तःक्लान्तमना मनागपि पथि प्रस्थातुमेवाक्षमः । संकेतीकृतमञ्जुवञ्जुललताकुञ्जेऽपि यन्नागतः ॥ १ ॥

भा० टी०-श्री कृष्णचन्द्रजी क्यों नहीं आये इसी का संकल्प विकल्प अपने मनमें राधिकाजी कररही हैं, कि श्रीकृष्णचंद्रजी क्या किसी दूसरी कामिनी के अभिसरण (संकेत) स्थानमें चले गये, अथवा अपने इष्टमित्रों के हास्य क्रीडामें बँध [फँस] गये, वा इस अन्धकारयुक्त गम्भिन वनमें मार्ग ढूंढ़ते हुये घूमते हैं क्योंकि इस वनमें थोड़ाही समय हुआ कि, अत्यन्त अन्धकारथा उसमें मार्ग का भूलना सम्भव है। या जैसे मैं श्रीकृष्णजी के विरहमें दुःखित होकर एक पगभी नहीं चलसकी इसी प्रकार वे भी मेरे विरह से दुःखित होकर एक पग भी चलनेमें असमर्थ होगये हों। क्योंकि, इस सुन्दर वेतसलताके कुंजको अपना संकेतस्थल बना करभी नहीं आये ॥ १ ॥

अथागतां माधवमन्तरेण सखीमियं वीक्ष्य

विषादमूकाम् ॥ विशंकमाना रमितं कयापि जनार्दनं दृष्टवदेतदाह ॥ २ ॥

भा० टी०–इसके अनन्तर कार्यकी सिद्धि न होने से दुःखित और चुपचाप और श्रीकृष्णजीके बिना अकेली आई सखीको देखकर "श्रीकृष्णचन्द्रजी क्या ? किसी दूसरी गोपरमणीके साथ तो रमण नहीं करते" इसकार्य को नेत्रोंसे देखनेके समान शंका करनेवाली राधिका सखीसें यह बोली ॥२॥

अथ चतुर्दशप्रबन्धो वसन्तरागेण एकताली ताले गीयते ।

स्मरसमरोचितविरचितवेषा ॥
गलितकुसुमदलविलुलितकेशा ॥ १ ॥

कापि चपलामधुरिपुणा विलसतियुवतिरधिकगुणा ॥ ध्रु० ॥

अथ चौदहवां प्रबन्ध वसन्तराग एकताला ॥१४॥

भा० टी०–हे सखि ! कामयुद्ध (संभोग) के योग्य आभूषणादि धारण करनेवाली विपरीत रति करनेके समय केशोंके पुष्प इधर उधर गिरगये हैं और वेणीभी ढीली होगई है ऐसी कोई चंचला और हमसेभी अधिक सौन्दर्य्यादि गुणावलीसे

विराजमाना कोई कामिनी श्रीकृष्णचन्द्र के साथ विलास कररही है ॥ १ ॥

हरिपरिरम्भणवलितविकारा ॥
कुचकलशोपरि तरलितहारा ॥ २ ॥ कापि०

भा० टी–हे सखि! कृष्णचन्द्रजीके आलिंगन करने से कामविकार उत्पन्न होनेवाली और विपरीत रतिमें जिसके कुचरूपी कलशोंपर हार हिलडोर कररहे हैं। ऐसी कोई कामिनी श्री कृष्णचन्द्र जी के साथ विलास कर रही है ॥ २ ॥

विचलदलकललिताननचन्द्रा ॥
तदधरपानरभसकृततन्द्रा ॥ ३ ॥ कापि०

भा० टी०–हे सखि! जिसके सुन्दर मुखरूपी चंद्रमा में चञ्चल अलकावली शोभायमान होरही है और जिसको श्रीकृष्णके अधरामृत पान करनेसे तन्द्रा (आलस्य) आरही है ऐसीकोई व्रजबाला श्रीकृष्णचन्द्रके साथ आनन्द कर रही है ॥ ३ ॥

चञ्चलकुण्डलदलितकपोला ॥
मुखरितरशनजघनगतिलोला ॥ ४ ॥ कापि०

भा० टी०–विपरीत रतिमे कुण्डलोंके हिलनेसे कुण्डलों की रगड़ लग २ कर जिसके कपोल घिस

गए हैं, झन २ शब्द करनेवाली करधनी युक्त जघनोंके हिलानेसे स्वयं चञ्चला कोई गोपांगना श्री कृष्णचन्द्रजी के साथ रमण कर रही है ॥ ४ ॥

दयितविलोकितलज्जितहसिता ॥
बहुविधकूजितरतिरसरसिता ॥ ५ ॥ कापि०

भा० टी०-हे सखि ! प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रजीके कटाक्ष सहित देखनेसे लज्जाके साथ मन्द २ हुस क्यानेवाली और नाना प्रकारकी रतिक्रीड़ामें नाना प्रकारके हंस, मयूर, पिक, इत्यादि पक्षियोंकी मधुर २ वाणीसे प्रसन्न कोई ब्रजगोपी श्रीकृष्णचन्द्रजीके साथ रमण कर रही है ॥ ५ ॥

विपुलपुलकपृथुवेपथुभङ्गा ॥
श्वसितनिमीलितविकसदनङ्गा ॥ ६ ॥

भा० टी०-रतिके आनन्दसे जिसका सर्वांग रोमांचित होजाता है और कम्पायमान होजाता है, और स्वर में भेद होता है और श्वास और नेत्रों को मूंदलेने से जिसका काम का भाव प्रकट है ऐसी कोई गोपांगना श्रीकृष्ण चन्द्रजी के साथ बिलास कर रही है ॥ ६ ॥

श्रमजलकणभरसुभगशरीरा ॥

परिपतितोरसि रतिरणधीरा ॥ ७ ॥

भा० टी०-रतिके परिश्रम सम्बन्धी स्वेद [पसीना] के बिन्दुओंके समूहसे जिसका शरीर शोभित हो रहा है और विपरीत रतिमें श्रीकृष्णचन्द्रके वक्षःस्थलपर स्थित और रतिरूप युद्धमें धैर्यको धारण करनेवाली कोई गोपांगना श्रीकृष्णचन्द्रजी के साथ रमण कर रही है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितहरिरमितम् ॥

कलिकलुषं जनयतु परिशमितम् ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे चतुर्दशः प्रबन्धः ॥ १४ ॥

भा० टी०-यह श्रीजयदेव कवि निर्मित श्रीकृष्णचन्द्र के सम्भोगका वर्णन श्रवणकरने वालों के कलियुग सम्बन्धी पापोंका नाश करै ॥ ८ ॥

इति गी० गो० भाषा टीकायां चतुर्दशः प्रबन्धः ॥ ४ ॥

विरहपाण्डुमुरारिमुखाम्बुज-।

द्युतिरियं तिरयन्नपि वेदनाम् ॥

विधुरतीव तनोति मनोभुवः।

सुहृदये हृदये मदनव्यथाम् ॥ ४ ॥

भा० टी०—अयि सखि! मेरे विरहसे पीले रंगवाले श्रीकृष्णचन्द्रजीके मुखारविन्दके समान

पीलेरंगवाला यह कामदेवका मित्र चन्द्रमा आनन्द देनेवाला है तो भी मेरे हृदयमें कामदेव की पीड़ाको बढ़ाता है ।

अथ पञ्चदशप्रबन्धो गुर्जरीरागेण एकतालीताले गीयते ।

समुदितमदने रमणीवदने चुम्बनवलिताधरे ॥ मृगमदतिलकं लिखति सपुलकं मृगमिव रजनीकरे ॥ रमते यमुनापुलिनवने विजयी मुरारिरधुना ॥ ध्रु० ॥

अथ पन्द्रहवां प्रबन्ध गुर्जरीराग एकताला ॥ १ ॥

भा० टी०—हे सखि ! श्रीकृष्णचन्द्रजी कामोद्दीपन (कामको जगाना) के लक्षणोंसे युक्त और चुम्बन करने से संकुचित सुन्दर अधर ओष्ठवाली किसी गोपरमणी के मुखपर कस्तूरीका तिलक बनाते हैं मानो चन्द्रमामें हरिणको लिखते होयँ ऐसे कामक्रीड़ामें विजयी श्रीकृष्णचन्द्रजी यमुनाके तीर वाले वनमें इस समय रमण करते हैं ॥ १ ॥

घनचयरुचिरे रचयति चिकुरे तरलिततरुणानने ॥ कुरबककुसुमं चपलासुषमं रतिपति

मृगकानने ॥ २ ॥

भा० टी० हे सखि ! मेघोंके समूहके समान सुन्दर युवजनोंके चित्तको चंचल करने वाले और कामदेव रूपी मृगोंका वन (जैसे बन मृगोंका निवासस्थान है) वैसे केश कामदेवका स्थान है श्री कृष्णचन्द्रजी ऐसे गोपवनिताकी वेणी में बिजलीके समान शोभावाला [पीला] कुरवक का पुष्प लगाते हैं अर्थात् कुरवकके पुष्पोंसे वेणी गूंथने हैं ॥२॥

घटयति सुघने कुचयुगगगने मृगमदरुचिरूषिते ॥ मणिसरममलं तारकपटलं नखपद शशिभूषिते ॥ ३ ॥

भा० टी०-हे सखि ! श्रीकृष्णचन्द्र जी कस्तूरी की छविसे युक्त, नखचिन्हरूपी चन्द्रमासे सुशोभित कठोर स्तनद्वय स्वरूप आकाश में निर्मल मणियोंके हार पहनाते हैं मानों तारोंके समूहको एकत्रित करते होंय (यहां कस्तूरीसे आकाशकी, नखके चिन्हसे चन्द्रमाकी और हारके मणियोंको तारोंसे समानता दिखाई है अर्थात् गोपियोंके स्तनोंमें नखचिन्ह और कस्तूरी लगाकर हीरों के हार पहनाते हैं)॥ ३ ॥

जितबिसशकले मृदुभुजयुगले करतलन-
लिनीदले ॥ मरकतवलयं मधुकरनिचयं वित-
रति हिमशीतले ॥ ४ ॥

भा० टी०-हे सखि ! कमल डंटियोंसे भी अधिक शोभायमान, कमल पुष्परूपी करतल [हथेली] वाले और हिमके समान शीतल ऐसे हाथोंमें श्रीकृष्णचन्द्रजी मरकत मणियोंसे जडित कंकण पहनाते हैं मानों कमलके पुष्पोंपर भ्रमर बैठे होंय ४

रतिगृहजघने विपुलापघने मनसिजकन-
कासने ॥ मणिमयरशनं तोरणहसनं विकिरति
कृतवासने ॥ ५ ॥

भा० टी०—कामदेवके बैठनेके लिये आसन, रतिके निवासस्थान स्वरूप और सुन्दर भीने वस्त्र को धारण करानेवाले किसी गोपीके अति मोटे जघन स्थलोंपर वह श्रीकृष्णचन्द्रजी वन्दनवारके समान करधनी पहना रहे हैं ॥ ५ ॥

चरणकिसलये कमलानिलये नखमणिग-
णपूजिते ॥ बहिरपवरणं यावकभरणं जनयति
हृदि योजिते ॥ ६ ॥

भा० टी०—हे सखि! वह श्रीकृष्णचन्द्रजी लक्ष्मीके निवासस्थान, और नखरूपी मणियोंसे सुशोभित किसी गोपवनिताके कोमल पत्तोंके समान साफ चरणोंको अपने हृदय पर स्थापन करके यावक (अलता, महावर) लगाते हैं ॥ ६ ॥

रमयति सुदृशं कामपि सदृशं खलहलधर सोदरे ॥ किमफलमवसं चिरमिह विरसं वद सखि विटपोदरे ॥ ७ ॥

भा० टी०—हे सखि जब वह दुष्ट और हल-धर बलदेवजीका भाई किसी अपने जैसी सुनयनाके साथ रमण करता है तब तुम्ही बतावो कि इस वेतसलताके गृहमें रस बिना (शृङ्गाररसके बिना) बहुत समयतक मैं क्यों बैठी रही अर्थात् अब अपने घर चलो ॥ ७ ॥

इह रसभणने कृतहरिगुणने मधुरिपुपद सेवके ॥ कलियुगचरितं न वसतु दुरितं कवि-नृपजयदेवके ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविंदे पञ्चदशः प्रबन्धः ॥ १५ ॥

भा० टी०—शृङ्गाररसका वर्णनकारी, हरिगुणों का गानकर्त्ता, और श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंका सेवी

जयदेव कविराजके हृदयमें कलियुग के पापोंका निवास मत होय ॥ १ ॥

इति श्रीगीत गोविन्द भाषा टीकायाँ पञ्चदशः प्रबन्धः ॥१५॥

कृष्णस्यानागमाना दुःखितां सखीमाश्वासयन्त्याह—

नाथात सखि निर्दयो यदि शठस्त्वं दूति किं दूयसे स्वच्छन्दं बहुवल्लभः स रमते किं तत्र ते दूषणम् ॥ पश्याद्य प्रियसङ्गमाय दयितस्याकृष्यमाणं गुणैरुत्कण्ठार्तिभरादिव स्फुटदिदं चेतःस्वयं यास्यति ॥ १ ॥

भा० टी०—हे सखि ! हे दूति ! निर्दयी और धूर्त श्रीकृष्णचन्द्रजी नहीं आए तो इसमें तुमको क्या दुःख होता है, क्योंकि वे बहुत और प्यारी स्त्रियों को रखने वाले हैं अतः वे उन स्त्रियों के साथ अपनी इच्छापूर्वक रमण करते हैं इसमें तेरा क्या दोष है अर्थात् तू इतना दुःख व्यर्थ क्यों पा रही है देख तू कि, उस प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रजी के सौन्दर्य्यादि गुणों के वशीभूत होकर तथा उत्कण्ठा और कामदेव की पीड़ा के बोझ से मानो बाहर निकल कर यह मेरा चित्त आपही आज उनसे मिलने जायेगा [अर्थात् राधिका जी को कामपीड़ा

इतनी बढ गई है कि जिससे इनका जीवन रहना अति कठिन हो गया है अतः मृत्यु के पश्चात् इनका मन श्रीकृष्ण जी में लीन हो ही, जायगा क्योंकि जिसका चित्त मरण समय में जहां रहता है उसको वहांही आना होता है, और राधिकाजी का चित्त तो जन्म से ले कर अब तक श्रीकृष्ण ही में रहा अतः यह तो अवश्य ही श्रीकृष्ण से मिलेगा)॥१॥

अथ षोडशप्रबन्धो देशाङ्करागेण
रूपकताले गीयते ॥

अनिलतरलकुवलयनयनेन ॥
तपति न सा किसलयशयनेन ॥ १ ॥
सखि या रमिता वनमालिना ॥ ध्रु० ॥

अथ सोलहवां प्रबन्ध देशांक राग रूपक ताल ॥१६॥

भा० टी०—हे सखि ! जिस गोपिका ने वायु से चंचल कमल के समान नेत्र वाले वनमाली श्री कृष्णचन्द्र के साथ रमण किया है वह कोमल कोमल पत्तों की शय्या पर शयन करने से संतप्त नहीं होती है और जो मेरे सदृश 'अरमिता' [जिसने रमण नहीं किया]वह तो कोमल पत्तों की शय्या पर शयन करने से संतप्त होती है) ॥ १ ॥

विकसितसरसिजललितमुखेन ॥
स्फुटति न सा मनसिजविशिखेन॥२॥ सखिया०

भा० टी०—हे सखि प्रफुल्लित कमल के सदृश सुन्दर मुख वाले श्रीकृष्ण जी के साथ जो व्रजाङ्गना रमण करती है वह कामदेव के वाणों से दो टुकड़े (पीड़ित) नहीं होती और जो मेरे समान हैं वे तो दो टुकड़े हो जाती हैं ॥ २ ॥

अमृतमधुरमृदुतरवचनेन ॥
ज्वलति न सा मलयजपवनेन॥३॥सखिया०

भा० टी०—हे सखि अमृत से भी अधिक मधुर और मनोहर वचन बोलने वाले श्रीकृष्णचन्द्रजी के साथ जो व्रज गोपिका रमण करती हैं वह मलयाचल सम्बन्धी [शीतल मन्द सुगन्ध] वायु से नहीं जलती हैं और जिसने मेरे सदृश रमण नहीं किया है उसको तो मलयानिल अवश्य ही दग्ध करता है ॥ ३ ॥

स्थलजलरुहरुचिकरचरणेन ॥
लुठति न सा हिमकरकिरणेन॥५॥ सखिया०

भा० टी०—हे सखि स्थल कमल के समान हस्त और चरण वाले श्रीकृष्णचन्द्र जी के साथ

जिस गोप रमणी ने रमण किया है वह रमणी चन्द्रमा की शीतल किरणों के स्पर्श से लोटती दुःखी नहीं है और जिसने श्रीकृष्ण के साथ मेरे सदृश रमण नहीं किया उसको तो, चन्द्र किरण तपाता ही है ॥४॥

सजलजलदसमुदयरुचिरेण ॥
दलति न सा हृदि चिरविरहेण॥५॥ सखिया०

भा० टी०—हे सखि! जल सहित मेघों के समूह के तुल्य वर्ण वाले श्रीकृष्ण जी के साथ जिसव्रज गोपरमणी ने रमण किया है उसका हृदय विरहादि से नहीं फटता और जिसने मेरे सदृश रमण नहीं किया उसका हृदय अवश्य ही फट जायगा ॥ ५ ॥

कनकनिकषरुचिशुचिवसनेन ॥
श्वसिति न सा परिजनहसनेन॥६॥सखिया०

भा० टी०—हे सखि सुवर्ण की रेखा के समान पीत और शुद्ध [साफ] वस्त्र धारण करने वाले श्रीकृष्णजी के साथ जिस व्रज गोपरमणी ने रमण किया है वह रमणी सखियों के हास्य से दुःख संसूचक श्वास नहीं लेती और जो मेरे सदृश है वह तो अवश्य ही बारम्बार श्वास लेती ही है ६

सकलभुवनजनवरतरुणेन ॥
वहति न सा रुजमतिकरुणेन ॥७॥ सखि या०

भा० टी–हे सखि त्रैलोक्य के समस्त जनों में श्रेष्ठ, जवान और अति दया वाले श्रीकृष्णचन्द्र के साथ जिस ब्रज गोप रमणी ने रमण किया है वह किसी प्रकार की भी पीड़ा नहीं पाती और जिसने मेरे सदृश श्रीकृष्ण जी के साथ रमण नहीं किया वह सर्व प्रकार की पीड़ाओं को पाती ही है ॥७॥

श्रीजयदेवभणितवचनेन ॥
प्रविशतु हरिरपि हृदयमनेन ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे षोडशः प्रबन्धः ॥१६॥

भा० टी०–श्रीजयदेव कवि के कहे हुए इन वाक्योंसे श्रीकृष्णचन्द्र जी भक्तों के हृदय में प्रवेश करें अर्थात् भक्तों के हृदय में प्रवेशकर के समस्त भक्त जनों के पापों को नाश करें ॥ ८ ॥
इति श्रीगीतगोविन्द भाषाटीकायां षोडशः प्रबन्धः ॥ १६ ॥ पीडयन्तं मलयानिलं प्रार्थयते—

मनोभवानन्दनचन्दनानिल
प्रसीद रे दक्षिण मुञ्च वामताम् ॥

त्वणं जगत्प्राण विधाय माधवम्
पुरो मम प्राणहरो भविष्यसि ॥ १ ॥

भा० टी०—हे कामदेवको जगानेवाली मलयाचल सम्बन्धी दक्षिणकी वायु! आप अपनी कुटिलताको छोड़िये और हमारे ऊपर प्रसन्न होइये, और हे जगत्के प्राण! यदि तुम्हारी यही इच्छा है कि इसका प्राणही हरण करूंगा तो एक क्षणमात्रके लिए श्रीकृष्णचन्द्रजीको मेरे सन्मुख करके मेरा प्राण हरण करलेना ॥ १ ॥

पुनरपि सखीं प्रत्याह—

रिपुरिव सखीसम्वासोऽयं शिखीव हिमानिलो-
विषमिव सुधारश्मिर्दूरं दुनोति मनोगते ॥
हृदयमदये तस्मिन्नेवम्पुनर्वलते बलात् ।
कुवलयदृशांवामः कामो निकामनिरंकुशः ॥२॥

भा० टी०—हे सखि जब वह श्रीकृष्ण मनमें आते हैं तब तुमलोगोंके साथ बैठना हमको शत्रुके समान, शीतलवायु अग्निके सदृश और चन्द्रमा विषके समान अत्यन्त दुःखी कर रहा है तो भी मेरा मन उसी निर्दयी श्रीकृष्ण में बलात्कार से

लगताही है अतः हे सखि ! स्त्रियों के लिए कामदेव अति कुटिल और निरंकुश है अर्थात् जैसे मत्तहाथी अंकुशके न रहनेसे मनमानी चाल चलता है उसी प्रकार जब स्त्रियोंको कामदेवकी मत्तता शिरपर चढ जाती है तब वे अपनी मनमानी चालें चलती हैं यहां पर राधिकाके मनमाने श्रीकृष्णजी हैं अतः श्रीकृष्ण का अपराध होनेपर भी श्रीकृष्ण हीकी ओर राधिकाका मन जाता है ॥ २ ॥

पुनरपि जीवितनिरपेक्षत्वेन मलयानिलादीन्प्रत्याह—

बाधाम्विधेहि मलयानिल पञ्चबाण
प्राणान् गृहाण न गृहं पुनराश्रयिष्ये ॥
किं ते कृतान्तभगिनि क्षमया तरङ्गै-
रङ्गानि सिञ्च मम शाम्यतु देहदाहः ॥ ३ ॥

भा० टी०—हे मलय सम्बन्धी चन्दन वृक्षोंके पवन ने हमको जितनी इच्छा होय उतनी पीड़ा दे और हे कामदेव ! आपभी मेरे प्राणोंको हरण करिये परन्तु अब मैं प्राणोंके रहने गृह नहीं जाऊंगी और हे यमराजकी बहिन यमुने ! तू भी अब मेरे पर क्यों क्षमा करती है क्योंकि तूं यमराजकी बहिन है अब तू अपने तरंगोंसे मेरे अंगों

का सिञ्चन कर जिसमें सदाके लिये मेरा सन्ताप दूर होजाय। अर्थात् अपने जलमें हमको डुबोले क्योंकि श्रीकृष्णजीके बिना मेरामरणही श्रेष्ठ है ३

सर्गान्ते कविर्नमस्करोति—

सान्द्रानन्दपुरन्दरादिदिविषद्वृन्दैरमन्दाद-
रादानम्रैर्मुकुटेन्द्रनीलमणिभिः सन्दर्शितेन्दि-
विरम् ॥ स्वच्छन्दम्मकरन्दसुन्दरगलन्मन्दा-
किनीमेदुरंश्रीगोविन्दपदारविन्दमशुभस्कन्दाय-
वन्दामहे ॥ ४ ॥

इति श्रीक० श्रीजयदेवकृत गीतगोविन्द महा०श्रीनाग.र नारायणो नाम सटीकः ७ सर्गः।

भा० टी०—अति हर्षित होकर इन्द्रादिदेवता ओंके समूह ने नीलमणि जटित मुकुटोंको जो श्री कृष्णके चरणारविन्दों में अति आदर पूर्वक नवाया इससे उनके चरणारविन्दपर भँवरेदिखलाई देने लगे और पुष्परस (सहद) के सदृश स्वच्छन्द निकसनेवाली गंगाकेसे स्निग्ध [चिकना] ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रजीके चरणारविन्दोंको हमलोग अशुभ (पाप) के विनाशार्थ प्रणाम करते हैं यहां भगवानके चरण को कमल बनाया देवताओं के

मुकुट में जो नीलम है उसको भँवरा और गंगाको पुष्परस इस तरह कमल का सब गुण है ॥ ४ ॥

इति श्रीजयदेव कविराज कृत गीतगोविन्दे भाषा टीकायुते श्रीनागरनारायणो नाम सप्तमः सर्गः ॥७॥

अष्टमः सर्गः ।

अधुना राधा प्रियं प्रातरागतं दृष्ट्वा साभ्यसूय वचन मेवमाह—

अथ कथमपि यामिनीं निनीय ।
स्मरशरजर्जरितापि सा प्रभाते ॥
अनुनयवचनं वदन्तमग्रे ।
प्रणतमपि प्रियमाह साभ्यसूयम् ॥ १ ॥

भा० टी०—इसके अनन्तर अति कष्टसे रात्रिको व्यतीत कर कामदेवके बाणोंसे जर्जरित भी होगई थी तौ भी वह राधिका प्रातःकालमें नम्रता युक्त वचनोंको कहने वाले और पावोंमें प्रणाम करते हुए श्रीकृष्णजीसे इर्षायुक्त वचन बोली ॥ १ ॥

साभ्यसूयवचनमेव गीतेनाह—

अथ सप्तदशप्रबन्धो भैरवरागेण यति-
ताले गीयते ॥

रजनिजनितगुरुजागररागकषायितमलस-
निमेषम् । वहति नयनमनुरागमिव स्फुटमुदि-
तरसाभिनिवेशम् ॥ १ ॥

हरि हरियाहि माधव याहि केशव मा वद
कैतववादम् । तामनुसर सरसीरुहलोचन या
तव हरति विषादम् ॥ ध्रु० ॥

सत्रयवां प्रबन्ध भैरव राग यति ताल ॥ १७॥

भा० टी०–हे केशव ! बड़े दुःखका विषय है
हे माधव ! आप उसीके पास जाइये, आप उसी
के पास जाइये !! जो आपके दुःखको हरण करती
है और इतने धूर्त्तता के वचन मत कहो यदि यह
कहो कि तुम्हारे विना मेरा दुःख नाश करनेवाला
दूसरा कोई नहीं है तो यह आपके नेत्र रात्रिके
जागरणसे लालवर्णके हो रहे हैं पलकोंमें भी
आलस्य दिखाई देता है और यह जो आपके
नेत्र लालवर्णके हो रहे हैं यही स्पष्टतया यह कह
रहे हैं कि इन नेत्रोंमें उसी स्त्रीके शृङ्गाररसका अनु-
राग भराहुआ है इसीसे लालरंगके हो रहे हैं ॥ १॥

ननु त्वदन्वेषणार्थं जागरान्मे नेत्रयोर्लौहित्य-
मलन्दुःखं शङ्कयेत्यत आह—

कज्जलमलिनविलोचनचुम्बनविरचित नी-

लिमरूपम् ॥ दशनवसनमरुणं तव कृष्णतनोति तनोरनुरूपम् ॥ २ ॥ हरिहरि०

भा० टी०–तुम्हारे खोजने के लिये जागने से यह आंख लाल हुई यदि कृष्णचन्द्र ऐसा कहें तो इस पर राधा जी कहती हैं । हे केशव ! हे श्री कृष्णजी ! कज्जल युक्त उस स्त्रीके नेत्रोंको चुम्बन करनेसे आपके ये लालवर्ण वाले ओष्ठ नीलरंगके होकर आपके सर्व शरीरके समान [काला] होगये हैं, अतः आप वहांही जाइये, जिसके आपने नेत्र चुम्बन किये थे ॥ २ ॥

किञ्च—

वपुरनुहरति तव स्मरसङ्गरखरनखरक्षतरेखम् ॥ मरकतशकलकलितकलधौतलिपेरिव रतिजयलेखम् ॥ ३ ॥ हरिहरि–

भा० टी०–हे केशव ! यह जो आपका शरीर कामदेवके युद्धमें तीखे २ नखोंके क्षतसे रेखा युक्त होगया है मानो (उसी स्त्रीने) प्रसन्न होकर मरकत [नीला सङ्ग मरमर) की शिलाके टुकड़ेपर सुवर्णाक्षरोंसे लिखकर रति के विजय पत्र (प्रशंसापत्र, सर्टिफिकेट) दिया है अतः जिससे आपने

प्रशंसापत्र पाया है उसीके पास जाइये ॥ ३ ॥

ननु मार्गं विस्मृत्य गच्छतो मे वपुषि वने कण्टकादिस्पर्शादेव दृश्यते न तु नखाङ्कमित्यत आह–

चरणकमलगलदलक्तकसिक्तमिदं तव हृदयमुदारम् ॥ दर्शयतीव बहिर्मदनद्रुमनवकिसलयपरिवारम् ॥ ४ ॥ हरि हरि०

भा० टी०—कदाचित् यह कहो कि तुम्हारे खोजने के लिये रातमें जाते समय यह छिल गया यह नखक्षत नहीं है इस पर राधा कहती हैं । हे श्रीकृष्णचन्द्रजी ! यह जो आपके हृदय में उसी के चरण रूपी कमलोंकी लगी हुई महावर ऐसी जान पड़ती है मानों कामदेवरूपी वृक्षके नवीन पत्तों का समूह बाहर होगया होय अतः जिसका चरण कमल आपके हृदयमें लगा है उसीके पास जाइये ४

दशनपदं भवदधरगतं मम जनयति ५ सि खेदम् ॥ कथयति कथमधुनापि मया सह तव वपुरेतदभेदम् ॥ ५ ॥ हरिहरि०

भा० टी०—हे माधव ! आपके ओष्ठों पर जो अन्य गोपांगनाओंके दांतों के चिन्ह दिखाई देते हैं वेही मेरे हृदयमें दुःख उपजाते हैं इससे इस

समय आपके और मेरे शरीरोंमें कितना अभेद (एकता) कहे देता है यदि आप ऐसा नहीं करते तो हमारे चित्तमें कुछभी दुःख नहीं होता आपने अन्य गोपियोंसे अपने ओष्टोंपर दंतक्षत करवाकर हमको दुःख दिया है अतः आपने जिन्होंसे ये चिन्ह करवाये हैं उन्हींके पास जाइये ॥ ६ ॥

ननु तवोपायनार्थं कमलत्रोटनं कृतवति मयि पद्मकोशदापतता भृङ्गेण मयाधरो दष्टो नतु दन्तक्षतमित्यत आह—

वहिरिव मलिनतरं तवकृष्ण मनोऽपि भविष्यति नूनम् ॥ कथमथ वञ्चयसे जनमनुगतमसमशरज्वरदूनम् ॥ हरि हरि०

भा० टी०—कदाचित् ऐसा कहो कि तुम्हारी प्रसन्नता केलिये मैं कमल का फूल तोडने गया था वहां पर भँवारे ने काटा यह दन्त क्षत नहीं है इस पर राधा कहती हैं । हे श्रीकृष्णजी ! मैं यह अनुमान करती हूं कि जैसे आपका शरीर बाहर से कृष्णवर्ण है वैसे आपका मन भी कृष्णवर्ण (मलीन) है यदि आप कहिये कि ऐसा नहीं है तो कामदेवकी ज्वालासे संतापित इस जनको कैसे ठग रहा है॥७॥

भ्रमति भवानबलाकबलाय वनेषु किमत्र विचित्रम् ॥ प्रथयति पूतनिकेव वधूवधनिर्दय बालचरित्रम् ॥ ७ ॥

भा० टी०–हे श्रीकृष्णचन्द्रजी ! आप इस वनमें अबलाओंके ग्रास करनेही के निमित्त घूम रहे हैं इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है क्योंकि आप का बाल्यावस्था का पूतना नाम राक्षसीके वधका निर्दयी चरित्रही यह कह रहा है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितरतिवञ्चितखण्डितयुवतिविलापम् ॥ शृणुत सुधामधुरं विबुधा विबुधालयतोऽपि दुरापम् ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे सप्तदशः प्रबन्धः ॥ १७ ॥

भा० टी०–हे पण्डित जनों ! श्रीजयदेव कवि निर्मित सम्भोग शृङ्गार रससे वंचित खण्डिता युवतीके विलाप को सुनिये क्योंकि यह श्रीकृष्ण चरित्र स्वर्गमेंभी दुर्लभ है।

इति श्रीजयदेव कवि विरचित गीतगोविन्दे भा० टी०सप्तदशः प्रबन्धः ॥ १७ ॥

तवेदं पश्यन्त्याः प्रसरदनुरागं बहिरिव ।

प्रियापादालक्तच्छुरितमरुणद्योति हृदयम् ॥
ममाद्य प्रख्यातप्रणयभरभङ्गेन कितव ।
त्वदालोकः शोकादपि किमपि लज्जां जनयति १

भा० टी०–हे ठग श्रीकृष्णजी ! दूसरी गोप-वनिताके चरणोंमें लगे हुए रक्त वर्णवाले अल-तासे संयुक्त आपका हृदय मानो बाहरहीके अनु-रागसे व्याप्त है अर्थात् आपके हृदयमें लगा हुआ यह अलता यों कह रहा है कि इनका अन्तः कर-णका प्रेम है ही नहीं । ऐसे बाहरी अनुरागवाले आपके हृदयको देखनेसे हम को, विख्यात और अतिशय प्रेमके विनाशसे (अर्थात् संसारमें आपका और मेरा प्रेम अत्यन्त है यह प्रसिद्ध है आपने ऐसे प्रेमका विनाश कर दिया) यह आपका दर्शन शोकसे अधिक लज्जा को उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

इदानीं सर्गान्ते कविर्भक्तानाशिषयति–

प्रातर्नीलनिचोलमच्युतमुरः सम्वीतपीतांशुकं ।
राधायश्चकितंविलोक्यहसतिस्वैरंसखीमण्डले ॥
व्रीडाचञ्चलमञ्चलं नयनयोराधाय राधानने ।
स्वादुस्मेरमुखोऽयमस्तुजगदानन्दायनन्दात्मजः

भा० टी०–प्रातःकालमें राधिकाका नीलवस्त्र

श्रीकृष्णचन्द्रजी और श्रीकृष्णजीका पीताम्बर श्री राधिका महारानीजी को धारण किऐ हुए देखकर जब सखियोंकी मण्डली आश्चर्य युक्त होकर धीरे २ हंसनेलगी तब लज्जा युक्त चञ्चल नेत्रोंसे राधिकाजीके मुखारविन्दको देखने वाले श्रीकृष्णचन्द्रजी संसारको आनन्ददायी हों ॥ २ ॥

इति श्रीजयदेव कवि निर्मित गीतगोविन्दे भा० टी० सहित खण्डितावर्णने विलक्षणलक्ष्मीपतिर्नामा ष्टमःसर्गः ॥८॥

नवमः सर्गः ।

प्रणयकोपात् हरिमधिक्षिप्येदानीं कृतपश्चात्तापां सखी आह—

अथ तां मन्मथखिन्नां रतिरसभिन्नां विषाद सम्पन्नाम् ॥ अनुचिन्तितहरिचरितां कलहान्त रितामुवाच रहः सखी ॥ १ ॥

भा० टी०–इसके अनन्तर कामदेवसे पीडिता, रति रंगसे रहिता, अति दुःखिता, श्रीकृष्णचन्द्रके चरित्रोंको स्मरण करनेवाली कलहांतरिता (पतिका तिरस्कारकरके पश्चात्ताप करनेवाली) राधिकासे कोई सखी एकान्त में बोली ।

अथ अष्टादशप्रबन्धो गुर्जरीरागेण यतितालेन गीयते।

हरिरभिसरति वहति मधुपवने॥
किमपरमधिकसुखं सखि भवने॥ १॥
माधवे मा कुरु मानिनि मानमये॥ध्रु०॥

अथ आठरहवां प्रबन्ध गुर्जरी राग यतिताल॥१८॥

भा० टी०—अये सखि राधिके! इस वसन्त वायुके बहनेके समय श्रीकृष्णचन्द्रजी जब तुम्हारे संकेत भूमिमें स्वयं चलेआए तो अब इससे बढकर गृहमें आनन्द होवेगा अतः हे मान करने वाली राधिके! तुम श्रीकृष्णजीके विषयमें कुछ भी मान मत करो॥ १॥

अपि च—

तालफलादपि गुरुमतिसरसम्॥
किं विफलीकुरुषे कुचकलशम्॥२॥ माधवेम।०

भा० टी०—अये सखि राधिका! ताल फल सेभी अधिक भारी और सरस इन कुचरूपी कलशोंको क्या निष्फल करती हो अर्थात् श्रीकृष्ण चन्द्रजीसे आलिंगन कर इन कुचोंका जन्म साफ़-

त्व करो (ताल फलोंसे इन कुचोंमें इस कारण भी अधिकता पाई जाती है कि ताल फलोंके भक्षणसे कुछ मादकता होती है और इनके दर्शन मात्रही से अत्यन्त मादकता हो जाती है)॥ २ ॥

ननु यदा हरिरागतस्तदा त्वया न कथितमित्यत आह—

कति न कथितमिदमनुपदमचिरम्

मा परिहर हरिमतिशयरुचिरम् ॥ ३ ॥ माधवेमा०

भा० टी०—अयं सखि राधिके ! मैं तुमको कईबार इसी समय कह चुकी हूं कि अति सुंदर श्रीकृष्णचन्द्रजी का मत त्याग करो यह क्या मैंने नहीं कहा था अर्थात् कहाही था ॥ ३ ॥

एवं सुमुखीं प्रत्याह—

किमिति विषीदसि रोदिषि विकला ॥

विहसति युवतिसभा तव सकला ॥ ४ ॥

भा० टी०—अयि राधे ! तुम अब क्यों व्यर्थ दुःख पाती हो और क्यों विकल होहो कर रोरही हो, यह युवती गोपियोंकी सभा तुमको देख २ हँसती है कि देखो गृहमें आए हुए श्रीकृष्णचन्द्र का निरादर करके अब उन्हींके निमित्त रो रही है ऐसी दशामें हास्ययुक्त हो है ॥ ४ ॥

तर्हि किं करोमीत्यत आह—

मृदुनलिनीदलशीतलशयने ॥

हरिमवलोकय सफलय नयने ॥५॥

भा० टी०—"तब मैं क्या करूं" इस प्रश्न पर पुनर्वार राधिकासे सखी कहती है कि अयि राधे! कोमल २ कमलनियोंके दलोंसे रचित अतएव शीतल शय्यापर बैठे हुए श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करो और अपने नेत्र फिर सफल करो ॥ ५ ॥

विचारयन्तीं प्रत्याह—

जनयसि मनसि किमिति गरुखेदम् ॥

शृणु मम वचनमनीहितभेदम् ॥ ६ ॥

भा० टी०–अयि राधे! तुम अपने मनमें इतना बड़ा दुःख किस कारणसे उत्पन्न करती हो मुझे अपना समझ कर मेरा कहना सुनो अर्थात् मैं तुम्हारे हितहीका वाक्य कहूंगी ॥ ६ ॥

कीदृशं वचनमित्यत आह—

हरिरुपयातु वदतु बहुमधुरम् ॥

किमिति करोषि हृदयमतिविधुरम् ॥ ७ ॥

भा० टी०—"ऐसा करो कि श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारे पास आवैं मीठे २ वचन कहैं और तुम

अपने चित्तको क्यों दुखा रही हो ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमतिज्ञलितम् ॥

सुखयतु रसिकजनं हरिचरितम्

इति श्रीगीतगोविन्दे अष्टादशः प्रबन्धः ॥ १८॥

भा० टी०—श्रीजयदेव कवि रचित, अति सुन्दर; यह कृष्ण चरित्र रसिकजनोंको सुख दे ॥८॥

इति श्रीजयदेव कवि रचित गीतगोविन्द भाषा टीकायां अष्टादशः प्रबन्धः ॥ १८ ॥

इदानीं प्रणतमपि प्रियमतिरोषात् त्यजंती राधाक्नि दन्ती सखीं प्राह—

स्निग्धे यत्परुषासि यत्प्रणमति स्तब्धासि यद्रागिणिद्वेषस्थासि यदुन्मुखे विमुखतां यातासि तस्मिन् प्रिये ॥ तद्युक्तं विपरीतकारिणि तव श्रीखण्डचर्चाविषंशीतांशुस्तमनो हिमं हुतवहः क्रीडामुदो यातनाः ॥ १ ॥

भा० टी०–हे श्रीकृष्णचन्द्र जी के साथ विपरीत विरुद्ध, (उलटा) आचरण करने वाली राधिके ! जब श्रीकृष्णचन्द्र जी तुम्हारे साथ मीठे मीठे वाक्य कहें तब तुम उनसे कठोर वाक्य कह

ती हो, जब वे विनय प्रकाश करें तब तुम उनके साथ जड़वत् मूक की सदृश आचरण करती हो अर्थात् श्रीकृष्ण जी के वाक्यों का कुछ भी उत्तर नहीं देती, जब वे तुम पर प्रेम प्रकट करे तब तुम उनसे शत्रु तुल्य व्यवहार करती हो और जब वे श्रीकृष्ण चन्द्र जी तुम्हारे सम्मुख होंय तब तुम उनसे अपना मुख फेर कर बैठ जाती हो हे सखी! श्रीकृष्णचन्द्र जी से विरुद्धाचरण करने वाली की यही दशा होती है जैसी कि आज कल तुम्हारी दशा होय रही है, देखो तुमने श्रीकृष्णचन्द्र से विपरीत आचरण किया उसी का यह फल है कि, तुमको चन्दन का लेप लगाना तो दूर रहा तुमसे यदि कोई चन्दन की चर्चा भी करता है तो वह चर्चा तुमको विष के समान, चन्द्रमा सूर्य के समान, पाला अग्नि के समान, और क्रीड़ा के आनन्द दुःख के समान लगता है ॥ १ ॥

इदानीं कविर्भक्तानाशिषयति—

अन्तर्मोहनमौलिघूर्णनचलन्मन्दारविस्रंसन-
स्तब्धाकर्षणदृष्टिहर्षणमहामन्त्रः कुरङ्गीदृशाम्
दृप्यद्दानवदूयमानदिविषद्दुर्वारदुःखापदां भ्रंशः

कंसरिपोर्व्यपोहयतु वः श्रेयांसि वंशी रवः ॥२॥

भा० टी०-हरिण नयनी स्त्रियोंके अन्तःकरण को मोहन करनेमें, धन्य २ कहनेके समय (वाह-वाहीके वक्त) वेणीमें गुथेहुए पारि जातके पुष्पों को वेणीसे वर्षा करानेमें और जड पदार्थोंकोभी अपनी ओर खीचनेमें मुरली बजानेके समय देखने तथा सुनने वालों के नेत्रादिकों को आनन्द देनेमें महा मन्त्र स्वरूप और गर्व करनेवाले दान-वोंसे पीडित देवगणोंके दुःसह दुःखका विनाश करने वाले श्रीकृष्णचन्द्रजीकी वंशीकी ध्वनि आप लोगों (भक्तजनों) की कल्याण करिणी होय ॥२॥

इति श्री जयदेव कविकृते गीत गोविन्द भाषा टीका युत मुग्ध मुकुन्दो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः।

इदानीं सोत्कण्ठःकृष्णो राधा दृष्ट्वा अनुनयन्नाह-

अत्रान्तरे मसृणरोषवशामसीम-
निःश्वासनिःसहमुखीं सुमुखीमुपेत्य ॥
सव्रीडमीक्षितसखीवदनां दिनान्ते ।
सानन्दगद्गदपदं हरिरित्युवाच ॥ १ ॥

भा० टी०–इसीके मध्यहीमें [जिससमय सखी राधिकाजी को समुझाती थी उसी समय) सन्ध्या के समय कुछ क्रोधवाली, उसी क्रोधसे वारम्वार जिसके मुखसे श्वास निकल रहा है और लज्जाके साथ सखीके मुखकी ओर निहार रही है ऐसी सुन्दर मुखवाली राधिकाके पास जाकर और आनंद में गद्गद होकर राधिका से श्रीकृष्णचन्द्र बोले॥१॥

उक्तमर्थं गीतेनाह—

अथ एकोनविंशः प्रबन्धो देशवडीरागेण
अष्टतालीताले गीयते ।

वदसि यदि किंचिदपि दन्तरुचिकौमुदी
हरति दरतिमिरमतिघोरम् ॥
स्फुरदधरसीधवे तव वदनचन्द्रमा
रोचयति लोचनचकोरम् ॥ १ ॥
प्रिये चारुशीले प्रिये चारुशीले,
मुञ्च मयि मानमनिदानम् ॥
सपदि मदनानलो दहति मम मानसं,
देहि मुखकमलमधुपानम् ॥ ध्रु० ॥

उन्नीसवां प्रबन्ध देशवराडी राग आठ ताल॥१९॥

भा० टी०–हे प्रिये ! हे सुन्दर स्वभाव वाली राधिके ! जब तूं कुछभी बोलती है तब तुम्हारे दाँतोंकी चाँदनी मेरे भयरूपी अतिघोर अन्धकार को विनाश करती है और तुम्हारा मुखरूपी चन्द्रमा मेरे लोचनरूपी चकोरों को तुम्हारे अधरोंकी सुधाको पान करनेके लिये ललचाता है । प्रिये अब तो तूं मानको छोड़ क्योंकि कामदेव संबन्धी अग्नि हमको अत्यन्तही जलारही है । उसीके शान्त्यर्थ अपने मुखरूपी कमलकी सुधाका पान करावो ॥ १ ॥

मृषा रोषं प्रकाशयंतीमाह—

सत्यमेवासि यदि सुदति मयि कोपिनी,
देहि खरनखशरघातम् ॥
घटय भुजबन्धनं जनय रदखण्डनं
येन वा भवति सुखजातम् ॥ २ ॥ प्रिये०

भा० टी०–हे सुन्दर दाँतोंवाली प्यारी ! यदि तुम हमारे ऊपर सत्यही क्रोधित हो तब तुम हमको अपने तीखे नखरूपी बाणोंसे घात करो, भुजाओंमें हमको बांधलो और दांतोंसे खण्डन करो अथवा हमारे दण्डके विषय में जिससे तुमको सुख उत्पन्न होय वैसाही हमको दण्ड देवो ॥ २॥

ननु याऽतिप्रिया सा दण्डं विदधातु किं मयात आह-

त्वमसि मम भूषणं त्वमसि मम जीवनं,
त्वमसि मम भवजलधिरत्नम् ॥
भवतु भवतीह मयि सततमनुरोधिनी,
तत्र मम हृदयमतियत्नम् ॥ ३ ॥ प्रिये०

भा० टी०–प्रिये! तुम्हीं मेरे भूषण हो तुम्ही मेरा, जीवन हो और तुम्ही मेरा संसाररूपी समुद्रमें रत्नस्वरूप हो अतः हे प्रिये! तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो, क्योंकि तुम्हारे प्रसन्न करनेमें मेरा चित्त अति यत्न कर रहा है ॥ ३ ॥

नीलनलिनाभमपि तन्वि तव लोचनं,
धारयति कोकनदरूपम् ॥
कुसुमशरबाणभावेन यदि रञ्जयसि,
कृष्णमिदमेतदनुरूपम् ॥ ४ ॥ प्रिये०

भा० टी०—तुम्हारे नील कमल के समान काले दोनों नेत्र हैं तौभी क्रोध से लाल कमल के समान हो रहे हैं यह उचित नहीं है। किन्तु इनको कामदेव के बाण (पुष्प) समझ कर कृष्ण को (अपने को) रंगती हो लाल करती हो अथवा अनुरक्त करती हो तो यह ठीक है ॥ ४ ॥

किंचित्प्रसन्नां वीक्ष्यमाह—

स्फुरतु कुचकुम्भयोरुपरि मणिमञ्जरी,
रञ्जयतु तव हृदयदेशम् ॥
रसतु रसनापि तव जघनघनमण्डले,
घोषयतु मन्मथनिदेशम् ॥ ५ ॥ प्रिये ॥

भा०टी०-हे प्रिये! तुम्हारे कुचरूपी कलशोंको मणिका हार सुशोभित करै, और वही हार तुम्हारे हृदय देशको रंजित (अनुरक्त) करै, और जघनों पर करधनी का शब्द होय और वही करधनी कामदेवकी आज्ञाकी घोषणा दे, अर्थात् तुमने जो मानके वशसे आभूषणों को उतार दिये हैं उनको फिर धारणकर कामक्रीडा करो ॥ ५ ॥

स्थलकमलगञ्जनं मम हृदयरञ्जनं
जनितरतिरङ्गपरभागम् ॥
भण मसृणवाणि करवाणि चरणद्वयं,
सरसलदलक्तकसुरागम् ॥ ६ ॥ प्रिये० ॥

भा० टी०-हे कोमलवाणी राधिके! स्थल कमलों से भी अधिक शोभायमान, मेरे हृदयको रंजन करनेवाले रति रंगमें परस्पर आनन्द दायी

तुम्हारे चरणोंमें सरस (सुन्दर) महावर लगा दूं ऐसी तुम हमको आज्ञा दो ॥ ६ ॥

स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनं,
देहि पदपल्लवमुदारम् ॥
ज्वलति मयि दारुणो मदनकदनानलो,
हरतु तदुपहितविकारम् ॥ ७ प्रिये०

भा० टी०—हे प्रिये! कामदेवकी पीड़ाके विनाशक तुम्हारे मनोहर और कोमल चरणोंको मेरे शिरपर भूषण स्वरूप स्थापन करो क्योंकि दारुण कामाग्नि हमको दुःख दे रही है उसको शान्त करें। अर्थात् तुम्हारे कोमल पत्रोंके समान चरण जब हमारे अंगोंसे स्पर्श करेंगे तब उनकी शीतलतासे मेरी कामाग्नि दूर होजायगी ॥ ७ ॥

इति चटुलचाटुपटुचारु मुरवैरिणो,
राधिकामधि वचनजातम् ॥
जयति जयदेवकविभारतीभूषितं,
मानिनीजनितशातम् ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे एकोनविंशतितमः प्रबन्धः

भा० टी०—इस प्रकार अतिशय चातुर्य और

प्रेम रससे भीने, जयदेव कविकी वाणी से सुशोभित (कथित) और मानवती नायिकाओं के लियें अति सुखको देनेवाले और राधिकाके प्रति श्रीकृष्णजी से कहे हुए वचन सब वचनोंसे वढ़ चढ़ हैं ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे भाषा टीकायामेकोनविंशः प्रवन्धः ॥ १६ ॥

इदानीमात्मानं निरपराधं ज्ञापयन् संभोगार्थं प्रोत्साहयन्नाह—

परिहर कृतातङ्के शंकां त्वया सततं घन-
स्तनजघनया क्रान्ते स्वान्ते परानवकाशिनि ।
विशति वितनोरन्यो धन्यो न कोऽपिममान्तरं
स्तनभरपरीरम्भारम्भे विधेहि विधेयताम् ॥ १ ॥

भा० टी०–हे मेरे विषयमें शङ्का रखनेवाली प्रिये! तुम इस शंकाको छोड़दो कि "मैं दूसरी नायिका के पास गया हूं" क्योंकि, जब कठोर कुच और जघनवाली तू मेरे चित्तको आक्रमण करती है तब मेरे हृदय में दूसरी नायिकाके रहनेका स्थानही नहीं रहता एक कामदेव को छोड़कर मेरे चित्तमें निवास करनेका किसी को अव-

काश नहीं मिलता हैं अतः हे प्रिये! स्तनोसे आलिंगन करने के तरफ ध्यान दो अर्थात् हमको आलिंगन करो ॥ १ ॥

यद्येवं न प्रत्येषि तदा मध्यपराधानुकूलं दंडमाचरेत्याह

मुग्धे विधेहि मयि निर्दयदन्तदंशं
दोर्वल्लिबन्धनिविडस्तनपीडनानि ॥
चण्डि त्वमेव मुदमञ्चय पञ्चबाण
चण्डालकाण्डदलनादसवः प्रयान्ति ॥२॥

भा० टी०–हे सुन्दरी! यदि तुम्हारी शंका दूर नहीं होय तो हमको अति निर्दयतासे दांतोंसे क्षत विक्षत करदो और दोनों भुजारूपी लताओंमे दृढ़ आलिंगन करके अति कठोर स्तनोंसे हमको पीडा दो, यही हमारे लिये दंड है। हे अतिक्रोध स्वभाववाली राधिके! तुम्ही हमको आनन्द दो क्योंकि इस समय मेरे प्राणोंको चांडाल कामदेव अपने बाणोंसे ले रहा है यदि तुम प्रसन्न न होवोगी तो मेरे प्राण कामदेव ले लेगा ॥ २ ॥

ननुकोपो नास्त्यत आह—

शशिमुखि तव भाति भंगुरभ्रू-
र्युवजनमोहकरालकालसर्पी ॥

तदुदितभयभञ्जनाय यूनां
त्वदधरसीधुसुधैव सिद्धमन्त्रः ॥३॥

भा० टी०—हे चन्द्रवदनी प्रिये ! तुम्हारी कुटिल भौहें युवा पुरुषोंको मोहन (मूर्छा) करनेमें भयंकर काली नागिन हैं। इन भौंहोंसे काटेहुए युवा पुरुषोंके लिये, तुम्हारा अधरामृतही सिद्ध मंत्र है जैसे कोई सिद्ध कृष्ण सर्पिणीसे काटेहुए मनुष्यों को सिद्ध मन्त्रद्वारा विष हीन करता है वैसेही इन भौंहरूपीणी कृष्णसर्पिणीसे जो मोहित होगए हैं. उनके लिये तुम्हारा अधरामृतही सिद्ध मंत्र है॥३॥

व्यथयति वृथा मौनं तन्वि प्रपञ्चय पञ्चमं
तरुणि मधुरालापैस्तापं विनोदय दृष्टिभिः ॥
सुमुखि विमुखीभावं तावद्विमुञ्च न वञ्चय
स्वयमतिशयस्निग्धो मुग्धे प्रियोऽहमुपस्थितः॥४॥

भा० टी०—हे सुन्दराङ्गि ! राधिके ! तुम्हारा यह व्यर्थ का चुपचाप बैठे रहना हमको अति दुःख दे रहा है, हे तरुणी ! हे मीठी २ वाणीसे पंचम स्वरसे हमसे संभाषण करो, और अपने दृष्टिसे मेरे हृदयके संताप को दूर करो अर्थात् तुम्हारे प्रेम पूर्वक देखनेहीसे मेरे संताप दूर हो जायेंगे

और हे सुन्दर मुखवाली ! तुम हमारेसे विमुख हो रही हो अब इस विमुखताको छोड़ो, अब हमको मत ठगो क्योंकि, मैं तुम्हारा प्यारा स्वयं आकर उपस्थित हुआ ॥ ४ ॥

अधुना मानापनोदनाय तदङ्गस्तुतिं करोति—

बन्धूकद्युतिबान्धवोऽयमधरः स्निग्धो मधूकच्छवि र्गण्डश्चण्डि चकास्ति नीलनलिन श्रीमोचनं लोचनम् ॥ नासाभ्येति तिलप्रसूनपदवीं कुन्दाभदन्ति प्रिये प्रायस्त्वन्मुखसेवया विजयते विश्वं स पुष्पायुधः ॥ ५ ॥

भा० टी०–हे अत्यन्त कोपवाली राधिके ! यह तुम्हारा अधर ओष्ठ दुपहरियाके पुष्पके सदृश, [लाल] चिकने और महुवे पुष्पके समान कान्ति वाले कपोल, नील कमल की शोभाको जीतने वाले ये नेत्र और तिलके पुष्पके समान यह नासिका सुशोभित हो रही है । हे कुन्द(मौलसिरी) के पुष्पके समान दांतवाली ! प्यारी । प्रायः (बहुधा) तुम्हारे मुखको सेवा करनेसे पुष्पायुध (कामदेव) संसारको जीतता है अर्थात् कामदेवके शस्त्र पुष्पही हैं वे पुष्प तुम्हारे मुखमें

निवास करते है अतः मैं यह अनुमान करता हूं कि इन्हीं पुष्पोंके द्वारा काम देवने संसारको जीत लिया है ॥ ५ ॥

दृशौ तव मदालसे वदनमिन्दुमत्यान्वितं
गतिर्जनमनोरमा विधुतरम्भमूरुद्वयम् ॥
रतिस्तव कलावती रुचिरचित्रलेखे भ्रुवा
वहो विबुधयौवतं वहसि तन्वि पृथ्वीगता ॥६॥

भा० टी०—हे सुंदरी! तुम्हारे नैत्र यौवनके मदसे आलस्य युक्त है मुख चन्द्रमाकी बुद्धिसे युक्त हैं अर्थात् तुम्हारा मुख देखनेसे तुम्हारे मुखमें चन्द्रमाकी बुद्धि हो जाती है कि यह चन्द्रमा ही है, तुम्हारा गमन (चलना) लोगोंके चित्तको आनन्द देनेवाला है तुम्हारी दोनों जांघ रंभा [कदली] के वृक्षको अपनी शोभासे तिरस्कार करने वाली हैं, तुम्हारी रति क्रीडा काम कलाओंसे युक्त है और तुम्हारी भौंह सुन्दर चित्र की रेखा के समान हैं, यहां ऊपर कहे हुए विशेषणोंसे मदालसा, इन्दुमती, मनोरमा, रंभा और कलावती इन अप्सरावोंके नामभी आगए इसीसे श्रीकृष्णचन्द्र जी कहते हैं कि तुम पृथ्वी पर निवास करती हो

तौ भी बड़े आश्चर्यकी बात है कि देवाङ्गनावों को धारण करती हो अर्थात् एक तुम्हारे में पूर्वोक्त सभी अप्सराओंके गुण हैं ॥ ६ ॥

कविः सर्गान्ते आशिषं प्रयुङ्क्ते—

प्रीतिं वस्तनुतां हरिः कुवलयापीडेन साधं रणे राधापीनपयोधरस्मरणकृत्कुम्भेन संभेदवान् ॥ पत्रे विभ्यति मीलति क्षणमपि क्षिप्रं तदालोकनाद् व्यामोहेन जितंजितंजितमभूद्व्यालोलकोलाहलः

भा० टी०—कवि सर्गान्तमे आशिर्वाद देते हैं, संग्राम में कुवलयापीड कंसके हस्तीके साथ संग्राम करनेमें लगे हुए श्रीकृष्णचन्द्रजीने जब उस हस्तीके मस्तकका स्पर्श किया तब राधिकाके पीन कुचोंका स्मरण होगया, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र, और जब हस्ती भयभीत हुआ तथा मर गया तब उस को देख कर उसी समय जीत लिया २ ऐसा देखनेवालों के चित्तको चंचल करनेवाला कोलाहल हुआ। अर्थात् बालकोंने यह कोलाहल किया कि बालक श्रीकृष्णचन्द्रने कंसको जीत्त लिया ऐसे श्रीकृष्ण भक्तजनोंकीप्रीति बाढावैं ॥ ६ ॥

इति श्रीजयदेवकविकृत गीतगोविन्दे भाषा टीका युक्तेमानिनीवर्णने चतुरचतुर्भुजो नाम दशमः सर्गः

एकादशः सर्गः।

अधुना राधां प्रति तत्सखी ब्रूते—

सुचिरमनुनयेन प्रीणयित्वा मृगाक्षीं।
गतवति कृतवेषे केशवे कुञ्जशय्याम्॥
रचितरुचिरभूषां दृष्टिमोषे प्रदोषे।
स्फुरति निरवसादां कापि राधां जगाद॥१॥

भा०टी०—बहुत कालतक प्रेमपूरित वचनों से मृगनयनी राधिकाको प्रसन्न करके अन्धकार मय सन्ध्या के समय अपना शृंगार करके श्रीकृष्ण चन्द्र जब कुञ्जभवनकी शय्या पर चलेगये तब कोई सखी राधिकाका सुन्दर शृंगार कर के प्रसन्नचित्त वाली राधिकासे बोली॥ १॥

उक्तार्थं गीतेनाह—

अथ विंशः प्रबन्धोवसन्तरागेण रूपक-
ताले गीयते॥

विरचितचाटुवचनरचनं चरणरचितप्रणिपातम्

संप्रतिवंजुलसीमनि केलिशयनमनुयातम् ॥१॥
मुग्धे मधुमथनमनुगतमनुसर राधिके ॥ ध्रु० ॥

वीसवां प्रबन्ध वसन्त राग रूपक ताल ॥२०॥

भा० टी०—हे राधिके ! हे मूर्खे ! नाना प्रकारके प्रेम युक्त वचनोंको कहनेवाले, तुम्हारे चरणोंमें प्रणाम करने वाले, तुम्हारे अनुकूल इस समय मधुरिपु श्रीकृष्ण चन्द्रजी वेतस लताओंके पास क्रीडाकी शय्या पर गए हैं अतः तुमको उनके पास अति शीघ्रचलना चाहिये ॥ १ ॥

घनजघनस्तनभारे दरमन्थरचरणविहारम् ॥ मुखरितमणिमञ्जीरमुपैहि विधेहिमरालविकारम् ॥ २ ॥ मुग्धे०

भा० टी०—हे कठोर तथा पीन जंघा और कुचस्थलवाली राधिके ! कुछ धीरे २ चरणोंको रखते हुए तथा मणियोंके नूपुर बजाते हुये हंसकी गतिका अनुकरण करो और श्रीकृष्णके समीप चलो ॥ २ ॥

शृणु रमणीयतरं तरुणीजनमोहनमधुरिपुरावम् ॥ कुसुमशरासनशासनवन्दिनि पिकनि

करे भज भावम् ॥ ३ ॥ मुग्धे

भा० टी०—हे सखि राधे! युवती जनोंके मोहन कारी अति श्रीकृष्णचन्द्रकी वंशीका स्वर सुनो, और इस समय कामदेवकी आज्ञाके लिये वन्दी कोकिलो के भाव को भजो अर्थात् अपनी मिठी वाणी से कृष्ण को प्रसन्न करो ॥ ६ ॥

अनिलतरलकिसलयनिकरेणकरेण लतानिकुरम्बम् ॥ प्रेरणमिव करभोरु करोति गतिं प्रति मुञ्च विलम्बम् ॥ ४ ॥ मुग्धे

भा० टी०—हे करभोरू चलनेमें विलंब न कर क्योंकि लताओ का समूह तुमको वायुसे चंचल पल्लवस्वरूप हाथों से प्रेरणा कर रहा है कि अब शीघ्रता करो चलने में विलम्ब न करो अर्थात् वायु से जो लताओंके पत्ते हिल रहे हैं सो तुमको मानों हाथों के संकेत से कह रहे हैं कि अब विलम्ब करनेमें ठीक नहीं ॥ ४ ॥

स्फुरित मनङ्गतरङ्गवशादिव सूचितहरिपरिरम्भम् ॥ पृच्छ मनोहरहारविमलजलधारममुं कुचकुम्भम् ॥ ५ ॥ मुग्धे

भा० टी०—हे श्रीराधे ! यदि आपको मेरे कहने पर विश्वास नहीं होयतो इन कामदेव के तरंगोंसे कांपते हुए और श्रीकृष्णचन्द्रके आलिंगन को पहलेही सूचित करने वाले और मनोहर हार ही जिन्होंके लिये निर्मल जलधारा के समान है ऐसे अपने कुचरूपी कुम्भोंसे पूछलो कि ये चंचल क्यों हो रहे हैं ॥ ५ ॥

अधिगतमखिलसखीभिरिदं तव वपुरपि रतिरणसज्जम् ॥ चण्डि रणितरशनारवडिण्डिम मभिशर सरसमलज्जम् ॥ ६ ॥

भा०टी०—हे अत्यन्त कोपस्वभाववाली राधिके ! तुम्हारी सर्व सखियोंने भी यह जानलिया कि तुम्हारा शरीर भी रतिस्वरूप संग्रामके लिये सज्जित हो रहा है अतः हे सखी ! करधनीके शब्दको करती हुई लज्जाको छोड रससे संयुक्त अभिसरण में चलो ॥ ६ ॥

स्मरशरसुभगनखेन सखीमवलम्ब्य करेण सलीलम् ॥ चलयवलयक्वणितैरवबोधय हरिमपिनिजगतिशीलम् ॥ ७ ॥ मुग्धे०

भा० टी०—हे सखिराधे ! कामदेवके बाण सदृश नखवाले हाथसे सखीका हाथ पकड़ कर

विलास पूर्वक चलो और कामदेव के वशीभूत श्री कृष्णचन्द्रको कंकणोंको हिलाकर उन्हें भी अपनी चाल जनावो ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमधरीकृतहारमुदासितवामम् ॥ हरिविनिहितमनसामधितिष्ठतुकण्ठतटीमविरामम् ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे विंशतितमः प्रबन्धः॥२०॥

भा० टी०—यह श्रीजयदेव कवि कथित, रत्नो के हारको भी तिरस्कार करनेवाला, और युवती जनोंको तिरस्कारकारी यह गीत हरिभक्तोंके कण्ठदेशमें सदा निवास करै ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे विंशतिम प्रबन्धः ॥ २० ॥

इदानीं सखी कृष्णस्य स्नेहातिशयमाह—

सा मां द्रक्ष्यति वक्ष्यति प्रियकथां प्रत्यङ्गमालिङ्गनैः प्रीतिं यास्यति रंस्यते सखि समागम्येति चिन्ताकुलः ॥ स त्वां पश्यति वेपते पुलकयत्यानन्दति स्विद्यति प्रत्युद्गच्छति मूर्च्छति स्थिर तमः पुञ्जे निकुञ्जे प्रियः ॥ १ ॥

भा० टी०—हे सखि राधे ! अत्यन्त अन्धकार

मय निकुञ्ज भवनमें बैठे तुम्हारे प्यारे श्रीकृष्ण चन्द्र चिन्ता [ध्यान] में व्याकुल होकर यों विचार ते हैं कि वह राधिका हमको देखकर मिठी २ बातें कहैंगी फिर सर्वाङ्गसे आलिंगन करके प्रसन्न हो जायगी फिर हमारे साथ क्रीडा करैगी इस प्रकार के ध्यानहीमें मनोरथ करते हुए श्रीकृष्णचन्द्रजी तुमको ध्यानहीमें देखते हैं राधिका अप न जाने क्या २ कहैगी यह सोचकर कांपते हैं, ध्यानहीमें अंगोंका स्पर्शकर रोमांचित होजाते हैं, ध्यानहीमें तुम्हारे साथ रति रङ्ग करके परिश्रमके पसीने टपकने लगजाते हैं ध्यानहीमें जब तुम्हारे लिये उठ खड़े होते हैं तब ध्यान टूट जाता है और तुमको अपने संमुख नहीं पाते तब मूर्च्छा हो जाती है इस पूर्वोक्त कथन से सखीने राधिकाको उसमें अत्यन्त प्रेम होना दिखाया ॥ १ ॥

अक्ष्णोर्निक्षिपदञ्जनं श्रवणयोस्तापिच्छ-
गुच्छावलिं मूर्ध्निश्यामसरोजदाम कुचयोः
कस्तूरिकापत्रकम् ॥ धूर्तानामपिसारसत्वरहृदां
विष्वङ्निकुञ्जे सखि ध्वान्तं नीलनिचोल-
चारुसुदृशां प्रत्यङ्गमालिङ्गति ॥ २ ॥

भा० टी०–हे सखि राधे ! अभिसरण[संकेत-स्थल] मे जल्दी करने वाली धूर्त नायिकाओंके कज्जल कानोंमें तमालके गुच्छे, मस्तकमें श्याम कमलोंकी माला और कुचोंपर कस्तूरीकी रचना विशेष कर निकुञ्जमें, चारोंओरसे, नीली कंचुकी के समान अन्धकार उनके सर्व अङ्गोंको आलिंगन करता है इससे एकतो अन्धकार हैही और दुसरे उस अन्धकारको गाढ बनानेवाले कज्जलादिक हैं, क्योंकि ये सर्वभी अन्धकारहीके वर्णके सदृश हैं इस कारण यदि और कोई आभूषण धारण न करो तो कोई चिन्ता नहीं है अन्धकारमें येही (कज्जलादिक) सहायक होते हैंइस पूर्वोक्त वर्णनसे कृष्णाभिसारिका सूचित हुई है ॥ २ ॥

काश्मीरगौरवपुषामभिसारिकाणा-
माबद्धरेखमभितो मणिमञ्जरीभिः ॥
एतत्तमालदलनीलतमं तमिस्रं ।
तत्प्रेमहेमनिकषोपलतां तनोति ॥ ३ ॥

भा० टी०—केसरके समान पीत वर्णवाली अभिसारि काओंको यह मणियोंकी कान्तिसे चारो ओर बंधाहुआ, तमालके पत्तोंके सदृश अतिनीला अन्धकार उन (अभिसारिकाओं) के प्रेमरूपी

सुवर्णका निकषोपल (कसौटी) के समान है अर्थात् जैसे कसौटी पर सुवर्णकी परीक्षा होती है वैसेही इस अन्धकारमें अभिसारिका स्त्रियोंकी परीक्षा होती है

हारावलीतरलकाञ्चनकाञ्चिदाम-
केयूरकङ्कणमणिद्युतिदीपितस्य ॥
द्वारे निकुञ्जनिलयस्य हरिं निरीक्ष्य ॥
व्रीडावतीमथ सखी निजगाद राधाम् ॥ ४ ॥

भा० टी०—इसके अनन्तर हीरे और मोतियोंके हार, चञ्चल सुवर्णकी करधनी, बाजूबन्द, कङ्कन इन्होंकी मणियों की कान्तिसे प्रकाशित कुञ्जभवनके द्वारपर श्रीकृष्णचन्द्रजीको देखकर लज्जायुक्त राधिकासे सखी बोली ॥ ४ ॥

तदेव गीतेनाह—

अथ एकविंशतितमः प्रबन्धो वराडीरागेण आढवताले गीयते ।

मञ्जुतरकुञ्जतलकेलिसदने ॥
विलस रतिरभसहसितवदने ॥
प्रविश राधे माधवसमीपमिह ॥ १ ॥

इक्कीसवां प्रबन्ध वराडी राग आडव ताल ॥२१॥

भा० टी०-हैं सुरतिके उत्साह हास्ययुक्त (प्रसन्न)मुखवाली राधिके! अति सुन्दर कुंजभवनके भीतर वाले केलीगृहमें प्रवेश करो और श्रीकृष्ण चन्द्रजीके समीप जाकर उनके साथ यहां पर विलास करो॥ १ ॥

अपि च—

नवभवदशोकदलशयनसारे ॥

कुचकलशतरलहारे ॥ २ ॥ प्रविश०

भा० टी०-हे कुचरूपी कलसों पर चंचल हार वाली राधिके! नवीन अशोकके पत्तोंसे सजी हुई श्रीकृष्ण की शय्यारूपी महाधनवाले निकुंज भवनमें जाकर श्रीकृष्णजी के साथ विलास करो ॥२॥

कुसुमचयरचितशुचिवासगेहे ॥

कुसुमसुकुमारदेहे ॥ ३ ॥ प्रविश०

भा० टी०-हे पुष्प सदृश कोमलांगि राधिके पुष्पों से रचित और शुद्ध (किसी दूसरी नायिकासे नहीं भोगा हुआ) इस निकुञ्ज भवनमें जाओ और श्रीकृष्णके साथ विलास करो ॥ ३ ॥

मृदुचलमलयपवनसुरभिशीते ॥

रसवलितललितगीते ॥ ४ ॥ प्रविश०

भा० टी०—हे सरस और सुन्दर गीतोंको गान करनेवाली राधिके ! मन्द२ बहती हुई और मलया-चलके संसर्गसे शीतल वायुवाले कुंज भवन में जावो और श्रीकृष्णचन्द्रके साथ विलास करो॥४॥

विततबहुवल्लिनवपल्लव घने ॥

चिरमिलितपीनजघने ॥ ५ ॥ प्रविश०

भा०टी०—हे बहुत मिली हुई और पीन(मोटी) जंघावाली राधिके ! विस्तारित नाना प्रकारकी नवीन लतावों के पत्तोंसे निबिड (गझिन) कुञ्ज-भवनमें जावो और श्रीकृष्णके साथ विलास करो॥

मधुमिलितमधुपकुलकलितरावे ॥

मदनरभस रसभावे ॥ ५ ॥ प्रविश०

भा० टी०—हे शृङ्गार रसके अभिप्रायवाली राधिका ! पुष्पोंके रसको पान करनेके लिये इकट्ठे हुए भ्रमरोंके गुञ्जनेसे गुञ्जारित कुञ्ज भवनमें जावो और श्रीकृष्ण के साथ विलास करो ॥ ६ ॥

मधुतरलपिकनिकरनिसदमुखरे ॥

दशनरुचिरुचिरशिखरे ॥ ७ ॥ प्रविश०

भा० टी०—हे सुन्दर दन्त रूपी शिखरवाली

राधिके तुम बसन्त ऋतुसे चञ्चल कोकिल समूह के शब्दसे शब्दायमान कुंजभवनमें जावो और श्रीकृष्णचन्द्रके साथ विलास करो ॥ ७ ॥

विहितपद्मावतीसुखसमाजे ॥ कुरु मुरारे मंगलशतानि भणति जयदेव कविराजराजे ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे एकविंशतितमः प्रबन्धः २१

भा० टी०—हे श्रीकृष्णचन्द्रजी ! आप पद्मावती (जयदेवजीकी स्त्रीका नाम) के सुख समाज को विधान करने वाले, भगवद्गुणगानकारी, श्री जयदेव कवि राजके विषय में अनेक मंगल करिये

इति श्री गीतगोविन्द भाषा टीकायां एकविंशतितमः प्रबन्धः ॥ २१ ॥

त्वां चित्तेन चिरं वहन्नयमतिश्रान्तो भृशं तापितः कन्दर्पेण च पातुमिच्छति सुधासम्बाधविम्बाधरम् ॥ अस्यांकं तदलंकुरु क्षणमिहभ्रूक्षेपलक्ष्मीलवक्रीतोदासइवोपसेवितपदाम्भोजे कुतः सम्भ्रमः ॥ १ ॥

भा० टी०—हे राधे ! ये श्रीकृष्णचन्द्रजी तुमको बहुत काल तक चित्तमें धारण करनेसे बहुत थक

गये हैं और कामाग्निसे अति सन्तापित होगये हैं इसी कारण तुम्हारे अमृत रससे भरे हुयें और विम्ब [कुंदुरु] के फलके सदृश ओष्ठको पान करनेकी इच्छा करते हैं। इसी कारण से इनकी गोदीको क्षणमात्रके लिये सुशोभित करों, अर्थात् आलिङ्गन करो यदि यह कहो कि इनके पास जानेमें हमको भय लगती है सो ठीक नहीं क्योंकि, यह श्रीकृष्णचन्द्र तो भौहोंकी चलानेकी शोभासे तुम्हारे नवीन खरीदे हुये दानके समान है अब तुम्ही वतावो कि जो चरणकमलसेवी दास है उसके समीप जानेमें घबड़ाहट कैसी ? ॥ १ ॥

सा ससाध्वसानन्दं गोविन्दे लोलोललोचना॥
सिञ्जाना मञ्जुमञ्जीर प्रविवेश निवेशनम् ॥२॥

भा० टी०-श्रीकृष्णचन्द्रके विषयमें चञ्चल नेत्रवाली वह राधिका लज्जा और आनन्दके साथ अपने पाजेवों को बजाती हुई कुंज भवनमें गई २

अथ द्वाविंशतितमः प्रवन्धो वराडीरागेण रूपकताले गीयते।

राधावदनविलोकनविकसितविविधविकारबिभङ्गम् ॥ जलनिधिमिव विधुमण्डलदर्शन-

तरलिततुङ्गतरङ्गम् ॥ १ ॥ हरिमेकरसंचिरम-
भिलषितविलासम् ॥
सा ददर्श गुरुहर्षवशंवदवदनमनङ्गविकाशम्॥ध्रु०

बाईसवां प्रबन्ध वराडीराग रूपकताल।

भा० टी०—चन्द्रमण्डलको देखकर चंचल और ऊंचे तरङ्गवाले समुद्रके समान राधिकाके मुखका दर्शन कर प्रफुल्लित एवं नाना प्रकारके शृंङ्गार रसके भावोंसे युक्त एक राधाहीमें प्रीति रखनेवाले बहुत दिनोंसे राधिकाके साथ विलासकी इच्छा करनेवाले और अत्यानन्दसे वशीभूत कामके भावसे पूर्ण मुखवाले श्रीकृष्णचन्द्र राधिकाको देखा ॥ १ ॥

हारममलतरतारमुरसि दधतं परिलम्बित-
दूरम् ॥ स्फुटतरफेनकदम्बकरम्बितमिवयमुना-
जलपूरम् ॥ २ ॥ हरिमेक०

भा० टी०—अत्यन्त श्वेत फेनोंके समूहसे संयुक्त यमुना जलके प्रवाहके समान अपने हृदय पर मुक्ता और हीरोंके जानुपर्य्यन्त लटकते हुये हारको धारण किय हुये श्रीकृष्णचन्द्रको राधिकाने देखा [फेनोंको सदृश हार यमुना जलके समान

श्रीकृष्णचन्द्रका श्याम शरीर)॥ २ ॥

श्यामलमृदुलकलेवरमण्डनमधिगतगौरदुकूलम् ॥ नीलनलिनमिव पीतपरागपटलभरवलयितमूलम् ॥ ३ ॥ हरिमेक०

भा० टी०–पीत रङ्गवाले पराग(भीतरकी धूली) के समूहसे आच्छादितमूल नील कमलके समान श्याम और कोमल शरीर पर पीताम्बर धारणकिये हुये श्रीकृष्णचन्द्रको राधिकाने देखा ॥ ३ ॥

तरलदृगञ्चलचलनमनोहरवदनजनितरतिरागम् ॥ स्फुटकमलोदरखेलितखञ्जनयुगमिव शरदि तडागम् ॥ ४ ॥ हरिमेक०

भा० टी०–शरद् ऋतुमें खिलें हुए कमलके बीचक्रीडा करनेवाले दो खञ्जन पक्षी युक्त तलाव के सदृश चंचल कटाक्षोंके चाल द्वारा सुन्दर मुख से स्त्रियोंमें अनुराग उत्पन्न करनेवाले श्रीकृष्णको राधिकाने देखा ॥ ४ ॥

वदनकमलपरिशीलनमीलितमिहिरसमकुण्डलशोभम् ॥ स्मितरुचिरुचिरसमुल्लसिताधरपल्लवकृतरतिलोभम् ॥ ५ ॥ हरिमेक०

भा० टी०-मुख कमलके दर्शनार्थ आयें हुए के तुल्य कुण्डलसे शोभितवाले और कोमल हास्यकी कान्तिसे सुन्दर विकाशित अधररूपी पल्लवोंद्वारा नायिकाओंको रतिमें लोभ करानेवाले श्रीकृष्णचन्द्रको राधिकाने देखा ॥ ५ ॥

शशिकिरणच्छुरितोदरजलधरसुन्दरकुसुमसुकेशम् ॥ तिमिरोदितविधुमण्डलनिर्मलमलयजतिलकनिवेशम् ॥ ६ ॥ हरिमेक०

भा० टी०-चन्द्रमाकी किरणोंसे रञ्जित मेघके मध्य के समान सुन्दर पुष्पोंसे सुशोभित केशवाले (यहां पुष्पोंकी चन्द्र किरणोंसे और मेघोंकी केशोंसे समानता दिखाई है) और अन्धकारमें उदित चन्द्र बिम्बकी समान निर्मल मलयागिर चन्दनके तिलक लाये हुए श्रीकृष्णचन्द्र को राधिकाने देखा ॥ ६ ॥

विपुलपुलकभरदन्तुरितं रतिकेलिकलाभिरधीरम् ॥ मणिगणकिरणसमूहसमुज्ज्वलभूषण सुभगशरीरम् ॥ ७ ॥ हरिमेक०

भा० टी०-अधिक रोमाञ्चों से व्याप्त सूरतकी क्रीडावोंसे चंचल और मणियोंके किरणोंके अति

प्रकाशमान अलङ्कारों से विभूषित शरीर वाले श्रीकृष्णचन्द्र को राधिकाने देखा ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितविभवद्विगुणीकृतभूषण-
भारम् ॥ प्रणहत हृदि मिनिधाय हरिं सुचिरं-
सुकृतोदयसारम् ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे द्वाविंशतितमः प्रबन्धः ॥

श्रीजयदेव कविके वर्णनकी अपेक्षा दूने अलङ्कारों से युक्त और पुण्योदयके तत्वस्वरूप श्री कृष्णचन्द्रजीको चिरकाल तक हृदयमें धारण कर प्रणाम करो ।

इति श्रीगीतगोविन्द भा० टी० द्वाविंशः सर्गः २२

अतिक्रम्यापाङ्गं श्रवणपथपर्यन्तगमन-
प्रयासेनेवाक्ष्णोस्तरलतरतारं पतितयोः ॥
इदानीं राधायाः प्रियतमसमालोकसमये ।
पपात स्वेदाम्बुप्रसर इव हर्षाश्रुनिकरः ॥ १ ॥

भा० टी० इस समय प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र के दर्शन के समय अति चञ्चल नयनोंके अपांगों [नेत्रोंके अन्तिम भाग] को उलंघन करके कर्ण तक जाने के परिश्रम से राधिका जी के नेत्रों

से स्वेद [पसीना] जल के समान आनन्दाश्रु बहने लगा ॥ १ ॥

भजन्त्यास्तल्पान्तं कृतकपटकण्डूतिपिहित-
स्मिते याते गेहाद्बहिरवहितालीपरिजने ॥
प्रियास्यं पश्यन्त्याः स्मरशर वशाकूतसुभगं
सलज्जा लज्जापि व्यगमदिव दूरं मृगदृशः ॥२॥

भा० टी०-कर्ण आदि के खुजलाने के छल से हास्य रोक कर जब सावधान सखिया कुंज से बाहर चली गयी तब शय्या के ऊपर प्राप्त, और कामदेव के बाणोंके वशीभूत सुन्दर श्री कृष्णन्द्र के मुख को देखने वाली, राधिका की लज्जा भी लज्जित होकर दूर चली गई (लज्जा ने यह देखा कि जब इस राधिकाकी सखियांही सब चली गई जब तुम भी यहां से दूर हटो अब तुम्हारे रहने का यहां कोई प्रयोजन नहीं है) ॥२२॥

जयश्रीविन्यस्तैर्महित इव मन्दारकुसुमैः ॥
स्वयं सिन्दूरेण द्विपरणमुदा मुद्रित इव ॥
भुजापीडक्रीडाहतकुवलयापीडकरिणः ॥
प्रकीर्णासृग्बिंदुर्जयति भुज दण्डो मुरजितः॥।॥३॥

भा० टी०-बाहु दण्ड क्रीडा से कुवलयापीड नामक कंस के हाथी को मारने वाले श्रीकृष्ण चन्द्र का भुजदण्ड रुधिर की बिन्दुओं से संयुक्त, मानो कुवलयापीड़ हस्ती के संग्राम से सन्तुष्ट श्रीकृष्णचन्द्र ने स्वयं सिंदुर के बिन्दुओं से सुशोभित किया हो, और जय लक्ष्मी से मानो परिजात के पुष्पों से पूजित मुरारी [श्रीकृष्णचन्द्र] का भुजदण्ड भक्तों की रक्षा के लिये सब से बढ़ चढ़ के हैं ॥ ३ ॥

इति श्रीजयदेव कविराज कृत गीत गोविन्दे भाषाटीकायुते अभिसारिका वर्णने सानन्दगोविन्दो नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः ॥

गतवति सखीवृन्देऽमन्दत्रपाभरनिर्भर-
स्मरशर वशाकूतस्फीतस्मितस्नपिताधराम् ॥
सरसमनसं दृष्ट्वा राधां मुहुर्नवपल्लव-।
प्रसवशयने विक्षिप्ताक्षी मुवाच हरिः प्रियाम्।२१।

भा० टी०—इसके अनन्तर जब सखी कुंज

भवनके बाहर चली गई तब अधिक लज्जाके भारसे कामदेवके बाणोंके वशमें होजाने के अभिप्रायसे बढ़े हुये इषत् हास्य से युक्त अधर (ओष्ठ) वाली, अनुरागसे संयुक्त और बार म्बार नवीन पल्लव और पुष्पोंकी शय्याको निहार ने वाली, राधिकाको देखकर अपनी प्यारीसे श्री कृष्णजी बोले ॥ १ ॥

अथ त्रयोविंशतितमः प्रबन्धो विभास रागेण एकतालीताले गीयते ।

किसलयशयनतले कुरु कामिनी चरणन-लिननिवेशम् । तव पदल्लववैरिपराभवमिद मनुभवतु सुवेशम् ॥१॥ क्षणमधुना नारायण मनुगतमनुसर मां राधिके ॥ ध्रु ॥

अथ तेरहवां प्रबन्ध विभास राग एकताला ॥ १३ ॥

भा० टी—हे सुन्दरि ! राधिके ! एक क्षण मात्रके लिये आधीन जो नारायण मैं हूं मेरे तुम क्षणमात्रके लिये अनुकूल होजावो अनुकूल होने का प्रकार दिखाते हैं कि, हे कामिनी ! इस कोमल पत्तोंकी शय्यापर चरणारविन्दोंको रखो और यह नवीन कोमल पत्तोंकी शय्या तुम्हारे

शत्रु हैं तिरस्कृत होय अर्थात् जब तुम इनके मस्तक पर चरण रखोगी तब ये तुम्हारे चरणोंकी कान्ति हरण करनेसे शत्रुके समान ये शय्याके पल्लव तिरस्कृत हो जायँगे ॥ १ ॥

करकमलेनकरोमिचरणमहमागमितासि विदूरम् ॥ क्षणमुपकुरुशयनोपरिमामिव नूपुरमनुगतिशूरम्॥२॥ क्षण मधुना०

भा० टी०–हे राधे ! आपको मैं बहुत दूर ले आया हूं इससे मैं आपके चरणोंको अपने करकमलोंसे दबादूं। और साथ चलनेसे शूर नूपुरों का मेरे समानही उपकार करो अर्थात् जिस प्रकार आपने मेरा उपकार किया है उसी प्रकार इन पायजेवों को भी शय्या पर स्थापन कर इनका भी उपकार करो ॥ २ ॥

वदनसुधानिधिगलितममृतमिवरचयवचनमनुकुलम् ॥ विरहमिवापनयामिपयोधररोधकमुरसि दुकूलम् ॥३॥ क्षण०

भा० टी०–हे सुन्दरि ! आप मुखरूपी चन्द्रमा से निकलेहुए अमृतके समान अनुकूल वचनोंको

कहा और विरह के समान आपके स्तनों के ऊपर के वस्त्र को मैं हटाऊंगा ॥ ३ ॥

प्रियपरिम्भण रभसवलितमिवपुलकित-मतिदुरवापम् ॥ मदुरसि कुचकलशंविनिवेशय शोषय मनसिजतापम् ॥४॥ क्षण०

भा० टी०—मेरे आलिंगन करनेके लिये मेरे संमुख और रोमांचित और दुसरोंका दुर्लभ कुच-रूपी कलशोंको मेरी छातीपर रखो और काम-देवकी पीडाको दूर करो ॥ ४ ॥

अधरसुधारसमुपनय भामिनि जीवय मृत-मिव दासम् । त्वयि विनिहितमनसं विरहानल दग्धवपुषमविलासम् ॥५॥ क्षण०

भा० टी०—हे भामिनि ! तुम हमको अधर सुधाका पान कराकर तुम्हारेमें लगेहुए चित्तवाले, विलासरहित और मरेहुएके तुल्य हम दासको जीवित करो ॥ ५ ॥

शशिमुखि मुखरय मणिरसनागुणमनुगुण कण्ठनिनादम् ॥ मम श्रुतियुगले पिकरव वि-कले शमय चिरादवसादम् ॥६॥ क्षण०

भा० टी०—हे चन्द्रमुखि राधे ! तुम्हारे कण्ठ के गीतों के शब्दके समान अपनी करधनीको बजाओ और कोकिलाके शब्दोंसे विकल मेरे कर्णोंको सुखी करो (विरहावस्थामें कोयलका शब्द अच्छा नहीं लगता है) ॥ ६ ॥

किञ्चिदवलोकयन्तीमाह—

मामतिविफलरुषा विकलीकृतमवलोकितु मधुनेदम् ॥ मीलति लज्जितमिव नयनं तव विरम विसृज रतिखेदम् ॥७॥ क्षण०

भा० टी०—हे सुन्दरि ! अत्यन्त निष्फल क्रोध से हमको देखनेके लिये इस समय तुम्हारे नेत्र लज्जित होकर मानों बन्द हो रहे हैं इस कारण तुम विराम करो और रतिके खेदको छोड़ो अर्थात् क्रोधको छोड़ कर मेरे साथ आनन्द करो ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदमनुपदनिगदितमधुरिपु-मोदम् ॥ जनयतु रसिकजनेषु मनोरमरतिरस भावविनोदम् ॥८॥

इति श्रीगीतगोविन्दे त्रयोविंशतितमः प्रबन्धः।

भा० टी०—पद पदमें श्रीकृष्णचन्द्रके आनंदको वर्णन करनेवाला श्रीजयदेव कवि रचित यह गीत

रसिक जनोंमें रस भाव आनन्दको उत्पन्नकरै ॥८॥

इति श्रीगीतगोविन्दे त्रयोविंशः प्रबन्धः ॥ २३ ॥

इदानीं सुरतारम्भं निरूपयति—

प्रत्यूहः पुलकांकुरेण निविडाश्लेषे निमेषेण च क्रीडाकूतविलोकितेऽधरसुधापाने कथा केलिभिः ॥ आनन्दाधिगमेन मन्मथकलायुद्धेऽपि यस्मिन्नभूदुद्भूतः स तयोर्बभूव सुरतारम्भः प्रियं भावुकः ॥ १ ॥

भा० टी०—उन श्रीकृष्ण और राधिकाजीके अत्यन्त अभीष्ट प्रकट सुरतका प्रारम्भ हुआ जिस सुरत के समय गाढ आलिङ्गनमें रोमांच विघ्नकारी मालूम होते थे क्रीड़ाके समय अभिप्राय पूर्वक देखनेमें निमिष (पलक गिरना) भी विघ्न करता था अधरोंकी सुधापान करनेमें बात भी विघ्न कारक होता था और नाना प्रकारकी क्रीड़ा और काम कलाओंसे संयुक्त सुरत रूपसंग्राममें आनन्द की प्राप्ति भी विघ्न सी मालूम पड़ती थी ।

तदेव विपरीताख्य उक्तिवैचित्र्येण कथयति—

दोर्भ्यां संयमितः पयोधरभरेणापिडितः पाणिजैराविद्धो दशनैः क्षताधरपुटः श्रोणीतटेनाहतः ॥

हस्तेनानमितः कचेऽधरमधस्यन्देन सम्मोहितः
कान्तः कामपि तृप्तिमाप तदहो कामस्य वामा
गतिः ॥ २ ॥

भा० टी०—जब राधिकाने हाथोंसे बांधा कुचोंके भारसे दबाया नखोंसे क्षत किया दांतोंसे अधरोंको काटी कटिसे तानकिया, केशोंको पकड़ कर हाथोंसे नमाया अधरोंकी मधुरताके रससे संमोहित किया तब श्रीकृष्णचन्द्र को अकथनीय तृप्ति हुई इसी कारणसे कामदेवको बड़ी टेढ़ी गति है। अर्थात् दूसरा कोई, यदि इस प्रकारके कार्य करे तो क्रोधही होजाता है और स्त्री द्वारा ये सब कार्य होनेसे प्रसन्नताही होती है अतः कामदेवकी गति टेढ़ी कही गई है ॥ २ ॥

तदेव पुनः कथयति—

मारांके रतिकेलिसंकुलरणारम्भे तया साहसप्रायं
कान्तजयाय किञ्चिदुपरि प्रारम्भि यत्सम्भ्रमात् ॥
निष्पन्दा जघनस्थली शिथिलिता दोर्वल्लिरुत्क-
म्पितम्वक्षोमीलितमक्षि पौरुषरसः स्त्रीणां कुतः
सिद्ध्यति ॥ ३ ॥

भा० टी०—सुरत क्रीड़ा रूपी संग्राम में जब काम चिन्ह स्पष्ट भासमान होने लगा तब उस राधाने कान्त श्रीकृष्णजीके जीतनेके लिये कुछ समयतक सम्भ्रम पूर्वक साहससे ऊपर (विपरीत) रति प्रारम्भ की तब ऊनकी जंघा जड़के समान होगई भुजा लता शिथिल पड़गई वक्षस्थल कम्पित होगया और नेत्र बन्द हो गये इसीलिये स्त्रियोंका पुरुषोंको रस कहां से हो सक्ता है अर्थात् नहीं सिद्ध हो सक्ता ॥ ३ ॥

तस्याः पाटलपाणिजांकितमुरो निद्राकषाये दृशौ निर्धुताधरशोणिमा विलुलितस्रस्तस्रजो मूर्धजाः ॥ काञ्चीदाम दरश्लथाञ्चलमिति प्रातर्निखातैर्दृशो रेभिःकामशरैस्तदद्भुतमहोपत्युर्मनः कीलितम् ॥ ४ ॥

भा० टी०—गुलाबी नखोंसे चिन्हित उस राधिकाका हृदय, रात्रिके जागरणसे लाल नेत्र, चुम्बनादिकसे जिस की लालिमा नष्ट होगई ऐसा अधर, बिखरी और ढीली पुष्पोंकी मालावाले केश ढीले पड़े हुये कम्रोंपरकी करधनी इन सबोंको प्रातः कालके समय देखनेसे पति, (श्री कृष्णचन्द्र)

का मन कामदेवके शरोंसे विद्ध हो गया यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है जिसको बाण लगे उसके मन को वेधना चाहिये यहां । १ नखक्षत २ जागरण, ३ चुम्बन, ४ केशोंको खींचना ५ वस्त्र ग्रन्थि विमोचन ये कामदेवके पांचो बाण लगे तो राधिकाको, और श्रीकृष्णचन्द्र का मन विध गया यही आश्चर्य है ॥ ४ ॥

त्वामप्राप्यमयि स्वयम्वरपरां क्षीरोदतीरोदरे
शंके सुन्दरि कालकूटमपिवन्मूढो मृडानीपतिः ॥
इत्थं पूर्वकथा भिरन्यमनसो विक्षिप्य वामाञ्चलं
राधायाःस्तनकोरकोपरि लसन्नेत्रोहरिः पातुवः ॥५॥

भा० टी०—हे सुन्दरी ! क्षीर समुद्रके तटमें मेरे स्वयंवर के लिए आई हुई तुमको नहीं पाकर मुग्ध होकर महादेवजी विष पान कर लिये ऐसा मैं अनुमान करता हूं । इस प्रकारकी अपनी पूर्व कथामें दूसरी ओर मन वाली राधीका के कुचों परका वस्त्र हटाकर उसके स्तनों के अगर भागको देखने वाले श्रीकृष्णचन्द्र जी आप लोगोंकी रक्षा करें ॥

व्यालोलः केशपाशस्तरलितमलकैः स्वेद-
लोलौ कपोलौ स्पष्टा दष्टाधरश्रीः कुचकलः

शरुचा हारिता हारयष्टिः ॥ काञ्ची काञ्चिद्ग-
ताशां स्तनजघनपदं पाणिनाच्छाद्य सद्यः ।
पश्यन्ती चात्मरूपं तदपि विलुलितस्रग्धेयं
धिनोति ॥ ६ ॥

भा० टी०—केश पाश इधर उधर बिखरा हुआ है और अलकावली चंचल हो रही है कपोल स्वेदोंके कणो से व्याप्त हो गये हैं इष्ट अधरोंकी शोभा स्पष्ट दिखाई दे रही है, कुचरूपी कलशोंकी दीप्तिसे मोतियोंका हार दूर होगया है, अर्थात् कंचुकी (चोली) न रहनेसे कुचोंकी शोभासे हारकी शोभा हार गई है, करधनो किसी दिशाको जा रही है अर्थात् अपने स्थान पर नहीं है और रात्रिकी मुरझाई हुई मालाको धारण किये हुए हैं यद्यपि ऐसी पूर्वोक्त दशा राधिकाकी होरही है तौभी अपने हाथोंसे स्तन और जघनोको आच्छादन (ढांप) कर अपने इस प्रकारके बेढंगे रूपको देखती हुई श्रीकृष्णचन्द्रके मन को प्रसन्न करती है॥

ईषन्मीलितदृष्टि मुग्धहसितं सीत्कारधा-
रावशादव्यक्ताकुलकेलिकाकुविकसद्दन्तांशुधौता

धरम् ।। श्वासोत्कम्पिपयोधरोपरि परिष्वङ्गात्कुरङ्गीदृशो हर्षोत्कर्षविमुक्तनिःसहतनोर्धन्योधयत्याननम् ।। ७ ।।

भा० टी० श्वाससे कुछ चंचल स्तनोंके आलिङ्गन करने से अधिक हर्ष के कारण शिथिल अतएव कार्यमें अक्षम मृग नैनी (स्त्री) का मुख नेत्र कुछ बन्द हो सुन्दर हास्यसे युक्त और सीत्कारोंकी परम्परा के वशसे अप्रकट और व्याकुलतासे निकले हुए शब्दोंके द्वारा विकशित और दांतों के किरणोंसे धुले हुए अधरहो ऐसा मुखको भाग्यवान् ही पान करते हैं ॥ ७ ॥

अथ सा निर्गताबाधा राधा स्वाधीनभर्तृका ।।
निजगाद रतिक्लान्तं कान्तं मण्डनवाञ्छया।।८।।

इति च सहसाप्रीतं सुरतान्ते मानितातिखिन्नाङ्गी । राधा जगाद सादरमिदमानन्देन गोबिन्दम् ।। ९ ।।

भा० टी० इसके अनन्तर सुरतके अन्तमें सर्व प्रकार से कामदेवकी पीडा शान्त होगई और अपने गुणों से अपने आधीनमें भर्त्ता [श्रीकृष्णजी] हो

गये तब वह श्रृङ्गारकर रतिके खेदसे थके हुए अपने कान्त से अपना श्रृङ्गार कराने की इच्छा से बोली ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णसे सम्मानित और रति के परिश्रम से थकी हुई सुरतके अन्तमें गोविन्द से आदर पूर्वक आनन्दके साथ राधिकाजी बोली ॥

यद्राधा निजगाद तदेव गीतेनाह—

अथ चतुर्विंशतितमः प्रबन्धोरामकरीरागेण यतिताले गीयते ।

कुरु यदुनन्दन चन्दनशिशिरतरेण करेणपयोधरे ॥ मृगमदपत्रकमत्र मनो भवमङ्गलकलशसहोदरे॥ १ ॥ निजगादसा यदुनन्दने क्रीडतिहृदयानन्दने ॥ ध्रु०

चौबिसवां प्रबन्ध रामकरीराग यतिताल॥२४॥

भा० टी० जिस समय हृदयको आनन्द देने वाले श्रीकृष्णचन्द्रजी क्रीडा कर रहे थे उसी समय अपने प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रजीसे राधिकाजी बोलीं कि हे यदुनन्दन ! चन्दन सदृश अति शीतल अपने हाथोंसे कामदेवके मंगल कलशोंके (सदृश)–कुचों पर कस्तुरीके पत्र [मछली, फूल, बेल,बूंद]लिखीये।

अलिकुलगञ्जनसंजनकं रतिनायकसायकमोचने

त्वदधरचुम्बनलम्बितकज्जलमुज्ज्वलयप्रियलोचने ॥ २ ॥ निज०

भा०टी० हे प्यारे श्रीकृष्ण चन्द्रजी ! कामदेव के बाणोंको छोड़नेवाले मेरे नयनोंमें भ्रमरों समूह के सदृश और आपके अधरोंके चुम्बनसे नष्ट हुए मेरे कज्जलको उज्वल (साफ,दुवारा)करो ॥२॥

नयनकुरङ्गतरङ्गविलासनिरोधकरे श्रुतिमण्डले ॥ मनसिजपाशविलासधरे शुभवेषनिवेशय कुण्डले ॥ ३ ॥ निज०

भा० टी०–हे सुन्दर वेषको धारण करनेवाले प्यारे ! नयनरूपी हरिणोंके विलासको रोकनेवाले मेरे कानों मे कामदेवके पाशके सदृश कुण्डल पहनाइये ॥ ३ ॥

भ्रमरचयं रचयन्तमुपरि रुचिरं सुचिरं मम सन्मुखे ॥ जितकमलोविमले परिकर्मय नर्मजनकमलकं मुखे ॥ ४ ॥ निज०

भा० टी०–हे प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रजी ! कमलोंको जीतनेवाले निर्मम मेरे सुन्दर मुखपर शोभावाली और जिसके ऊपर भ्रमरोंका समूह गिरताहै (अर्थात् जिनको देखकर भ्रमरोंका समूह

अपनी जाति की वृद्धिसे इनके ऊपर गिरतेही अर्थात् भ्रमर सदृश) और कामको उत्पन करने-वाली, अलकावलियोंको सुधारो अर्थात् भ्रमरोंके सदृश मेरे काले केशोंको गूंथो ॥ ४ ॥

मृगमदरसवलितं ललितं कुरु तिलकमलिकरजनीकरे ॥ विहितकलंककलं कमलानन विश्रमितश्रमसीकरे ॥ ५ ॥ निज०

भा० टी०–हे कमलमुख श्रीकृष्णचन्द्रजी ! रति के परिश्रममें स्वेद बिन्दुवोंसे युक्त अर्द्धचन्द्र सदृश ललाटमें कलङ्क रेखाके समान कस्तुरी रससे तिलक करिये ॥ ५ ॥

ममरुचिरे चिकुरे कुरु मानद मनसिज ध्वजचामरे ॥ रतिगलिते ललिते कुसुमानि शिखण्डिशिखण्डकडामरे ॥ ६ ॥ निज०

भा० टी०–हे मानको देनेवाले यदुनन्दन ! कामदेवकी पताकाके चामर [चंवर] सदृस, रति में ढीले, हुए सुन्दर और मयूर पिच्छके समूहके समान मेरे केश पाशमें पुष्प लगाइये ॥ ६ ॥

सरसघने जघने मम शम्बरदारणवारण कन्दरे ॥ मणिरशनावसनाभरणानि शुभाशय

वासय सुन्दरे ॥ ७ ॥ निज०

भा० टी० हे उदार चित्त श्रीकृष्णचन्द्रजी आप मेरे कामदेवरूपी मत्त हस्तीके निवासस्थान, और शृङ्गार रससे निविड (गहिन) मेरे सुन्दर जंघनों पर मणियों की करधनी, वस्त्र और आभूषणोंको पहनाइये ॥ ७ ॥

श्रीजयदेववचसि शुभदे हृदयं सदयं कुरु मण्डने ॥ हरिचरणस्मरणामृतनिर्मितकलिकलुषज्वरखण्डने ॥ ८ ॥ निज०

इति श्रीगीतगोविन्दे चतुर्विंशतितमः प्रबन्धः

भा० टी०—श्रीकृष्ण के स्मरण [ध्यान रूपी अमृतसे कलियुगमें किएहुए पापोंका विनाशक भूषण स्वरूप, कल्याण दानी श्रीजयदेव कविराज के गीतमें अपने हृदयको [तत्पर] करिये ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्द भा० टी० चतुर्विंशतितमः प्रबन्धः ॥ २४ ॥

रचय कुचयोः पत्रं चित्रं कुरुष्व कपोलयोर्घटय जघने काञ्चीमञ्च स्रजा कबरीभरम् ॥ कलय वलयश्रेणीं पाणौ पदे कुरु नूपुराविति निगदितः प्रीतः पीताम्बरोऽपि तथाकरोत् ॥ १ ॥

भा० टी०–हे प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रजी ! आप अपने हाथों से मेरे कुचोंपर पत्र (सुन्दर पत्रोंका अकार) की रचना करिये कपोलोंपर (मित्र फूल पत्ते इत्यादि) लिखिये जघनस्थलोंपर कांची [करधनी] पहनाइये और अपने हाथोंसे मेरे केशपासको पुष्पोंसे गूथिये और हाथों मे कङ्कन और चरणोंसे नूपुर [पायजेब] पहनाइये यह राधिकाने श्रीकृष्णचन्द्रजीसे कहा तब पीताम्बर धारी श्रीकृष्णचन्द्रने प्रसन्न होकर वैसाही किया अर्थात् राधिकाका शृङ्गार किया ॥ १ ॥

पर्यङ्कीकृतनागनायकफणा श्रेणीमणीनाङ्गणे।
संक्रान्तप्रतिबिम्बसंकलनया बिभ्रद्वपुर्विक्रियाम्॥
पादाम्भोरुहधारिवारिधिसुतामक्ष्णांदिदृक्षुःशतैः॥
कायव्यूहमिवाचरन्नपचिताकूतोहरिः पातुवः ॥२॥

भा० टी०–पलङ्गके स्थानापन्न शेषजीके मस्तक की मणियों में पड़ेहुए प्रतिबिम्ब (परछाईं) के सम्बन्धसे अनेक रूपोंको धारण करते हुये मानो चरणोंकी सेवा करने वाली लक्ष्मीजीको सैकड़ों नेत्रोंसे देखने के लिये अनेक शरीरों को धारण करने वाले कामदेवके भावसे युक्त श्री कृष्णचन्द्र जी आप लोगोंकी रक्षा करें ॥ २ ॥

यद्गान्धर्वकलासु कौशलमनुध्यानञ्च यद्वैष्णवम् यच्छृङ्गारविवेकतत्त्वरचनाकाव्येषु लीलायितम् ॥ तत्सर्वं जयदेवपण्डितकवेः कृष्णैकतानात्मनः सानन्दाः परिशोधयन्तु सुधियः श्रीगीतगोविन्दतः ॥ ३ ॥

भा० टी०-जो गान्धर्व कला [गाम] में जो चतुराई है, श्रीकृष्णचन्द्रका जो ध्यान हैं और जो काव्योमें शृङ्गार रसका अनेक भेदकी रचना है ये सर्व श्रीकृष्णचन्द्रमें एकाग्र चित्तवाले पण्डित श्रीजयदेवकविके [बनायें हुये) गीतगोविन्दसे पण्डित लोग शोधन करलें अर्थात् जिन कवियोंको गानविद्याका और शृंगाररसके काव्यकी रचना करना होय वे इन सबके विषयमें इस ग्रन्थसे शिक्षा ग्रहण करैं ॥ ३ ॥

श्रीभोजदेवप्रभवस्य राधादेवीसुतश्रीजयदेवकस्य ॥ पराशरादिप्रियवर्गकण्ठे श्रीगीतगोविन्दकवित्वमस्तु ॥ ४ ॥

भा०टी-श्रीराधा देवकीके गर्भसे श्रीभोजदेवके पुत्रश्रीजयदेव कविकी यह गीतगोविन्दकी कविता पराशरादिक श्रेष्ठ कवियोंके कण्ठमें अर्पित होय ॥४॥

साध्वी माध्वीकचिन्ता न भवति भवतः शर्करे कर्कशासि द्राक्षेद्रक्ष्यन्ति केत्वाममृत मृतमसि क्षीर नीरं रसस्ते ॥ माकन्द कन्द कान्ताधर धरणितलं गच्छ यच्छन्ति भावम्। यावच्छृङ्गारसारस्वतमिह जयदेवस्य विष्वग्वचांसि

भा०टी०—श्रीजयदेव कवि अपने काव्यकी प्रशंसामें कहते हैं कि इस संसारमे जबतक श्री कविके शृङ्गाररसके भावका काव्य विराजमानहै तबतक हैमाध्वीक; (महुआ) इसके सामने तेरी चिन्ता ठीक नहीं होती, हे शक्कर ! तू कठोर है, द्राक्षे ! (दाख) तुमको कौन देखेगा, हे अमृत ! तू इसके सामने मरा हुआ है, हे क्षीर ! [दुध] तेरा रस जलके दृश हैं हे आम्र तू रो, स्त्रीयोंके अधर ! तू भी तब तक पातालमें चला जायक्यों कि इसका नाम ही अधरका अर्थ नीच] अर्थात् जयदेव कविके इस सर्वोत्तम काव्य के सामने कोई इस सुन्दर न लगेगा सब फीके पड़ जायेंगे।

इति श्रीकविराजश्रीजयदेवकविकृतगीतगोविन्दे भाषा टीकायुते प्रीतपीताम्बरोनाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दम समाप्तम्।

गोकुल प्रेस नं० ४६ बुलानाला बनारस सिटी।